R.N.I. No. 2321/57
अप्रैल 2016

ओ३म्

रजि. सं. MTR नं. 04/2016-1
अंक 3

तपोभूमि

मासिक

श्री गुरु विरजानन्द आर्ष गुरुकुल वेद मन्दिर मथुरा में 7 मार्च 2016 को ऋषि बोधोत्सव पर्व सोत्साह सम्पन्न

गत वर्षों की भाँति इस वर्ष भी महाशिव रात्रि का पर्व महर्षि दयानन्द बोधोत्सव के रूप में वेदमन्दिर मथुरा में मनाया गया। इस अवसर पर 51 कुण्डीय यज्ञ का भव्य आयोजन किया गया। आर्य जनता ने यज्ञ में उत्साहसहित आहुतियाँ प्रदान की। आगरा, फिरोजाबाद, मैनपुरी, एटा, इटावा, औरैया, बुलन्दशहर, अलीगढ़, हाथरस, कासगंज, भरतपुर, पलवल, गाजियाबाद, फरीदाबाद, महेन्द्रगढ़, सोनीपत, मेरठ आदि जनपदों से आर्यजन श्रद्धासहित ऋषिवर की दीक्षास्थली पर पधारे। इस अवसर पर भजनोपदेशकों और विद्वानों के मार्मिक व्याख्यान हुए। श्री देवीसिंह जी अकबरपुर, श्री कमलदेव जी अकोस-मथुरा के भजन हुए गुरु विश्वविद्यालय वृन्दावन के ब्रह्मचारी राष्ट्रवसु ने मधुर भजनों के द्वारा जनता को मंत्र-मुग्ध कर दिया। ब्रह्मचारी शिवेन्द्र आर्य ने महर्षि दयानन्द के जीवन पर सारगर्भित विचार प्रकट करते हुए वर्त्तमान में नई पीढ़ी को स्वामी दयानन्द की मान्यताओं के साथ जोड़ने का आह्वान करते हुए कहा कि तभी राष्ट्रियता का प्रादुर्भाव नई पीढ़ी में होगा अन्यथा जे.एन.यू. जैसी दुर्भाग्यपूर्ण घटनायें राष्ट्रिय भावना को क्षति पहुँचाती रहेंगी। ब्रह्मचारी अमित शास्त्री ने वर्त्तमान परिप्रेक्ष्य में महर्षि दयानन्द के विचारों के उपयोगिता पर विस्तृत प्रकाश डाला।

उन्होंने कहा कि जब तक देश में सामाजिक, राजनैतिक, शैक्षणिक और आर्थिक विषमता रहेगी। तब सामाजिक जीवन में शान्ति की स्थापना होना असम्भव है इसके शिव संकल्प से युक्त व्यक्तियों की समाज को आवश्यकता है। व्यक्ति विचार से बनता है और विचार उत्तम शिक्षा के द्वारा बनते हैं इसीलिए सारी समस्याओं के समाधान के लिए वैदिक शिक्षा या जिससे गुरुकुलीय शिक्षा कहते वही एक मात्र विकल्प है। शास्त्री जी ने अपने कार्यक्षेत्र की भावी योजनाओं पर भी प्रकाश डाला जिसका आर्य जनता हार्दिक स्वागत किया। उनको प्रत्येक प्रकार का सहयोग देने का आश्वासन भी दिया। आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान पण्डित विपिनबिहारी जी ने मंच का संचालन किया। मन्त्री श्री बृजकिशोर जी ने यज्ञ की व्यवस्थाओं को दिखवाया।

इस अवसर पर श्री भगतसिंह वर्मा पूर्व आई ए एस, श्री प्रेमसिंह जादौन, श्री सत्यप्रिय आर्य, श्री मेजर धर्मेन्द्रनाथ सक्सैना, श्री डॉ0 अमरचन्द, श्री रमेशचन्द आर्य प्रबन्धक डी.ए.वी., ट्रस्ट के अध्यक्ष डॉ0 सत्यप्रकाश अग्रवाल, मंत्री श्री ब्रजभूषण जी, श्री योगेश बरारी, श्री रघुवीर बलरई, श्री भुवनेश बलरई, श्री साहबसिंह आर्य लालपुर, श्री शिव वर्मा बलरई, श्री विनोद चौधरी बाजना, श्री प्रभुदयाल हकीमपुर, श्री गिर्राज जी हरियागढ़ी, डॉ0 प्रवीन अग्रवाल, श्री गोपाल खण्डेलवाल, श्री विनोद खण्डेलवाल, श्री विवेक

-शेष पृष्ठ संख्या 35 पर

तपोभूमि

ओ३म् वयं जयेम (ऋक्0)

शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक कल्याण की साधिका

(आर्य जगत में सर्वाधिक लोकप्रिय मासिक)

वर्ष–62 संवत्सर 2073 अप्रैल 2016 अंक 3

संस्थापक
स्व0 आचार्य प्रेमभिक्षु

संपादकः
आचार्य स्वदेश
मोबा. 9456811519

अप्रैल 2016

सृष्टि संवत्
1960853117

दयानन्दाब्दः 193

प्रकाशक
सत्य प्रकाशन
आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग
मसानी चौराहा, मथुरा
(उ0 प्र0)
पिन कोड–281003

दूरभाषः
0565–2406431
मोबा. 9759804182

अनुक्रमणिका

लेख–कविता		पृष्ठ संख्या
वेदवाणी	–डॉ0 रामनाथ वेदालंकार	4
पुराणों को किसने बनाया	–डॉ0 श्रीराम आर्य	5–8
प्रकाश मार्ग दिखाओ	–टी.एल.वासवानी	9–10
क्रोधादि कषायों को वश में रखना	–बाबू सूरजभान वकील	11–14
ब्रह्मचर्य–विज्ञान	–जगननारायण देव	15–18
मुक्तक	–रोहित आर्य	19–22
सफलता का पहिला साधन 'काम'	–केदारनाथ गुप्त	23–26
समय का सद्व्यय	–पण्डित माधवराव	27–31
श्रद्धा से ज्ञान और ऐश्वर्य की वृद्धि		32
मान्यमतिः		33–34

❁❁❁

वार्षिक शुल्क 150/– पन्द्रह वर्ष के लिये शुल्क 1500/– रूपये

वेदवाणी

डॉ० रामनाथ वेदालंकार

आंजन मणि के तीन दास

त्रयो दासा आंजनस्य तक्मा बलास आदहिः।
वर्षिष्ठः पर्वतानां त्रिककुन्नाम ते पिता।। -अथर्व0 4.9.8

शब्दार्थ:-

(आंजनस्य) आंजन मणि अर्थात् अंजन से निर्मित योग के (त्रयः दासा) तीन दास हैं-(तक्मा) ज्वर, (बलासः) श्लेष्मरोग (आत्) और (अहिः) साँप। हे आंजन! (पर्वतानां वर्षिष्ठः) पर्वतों में सबसे श्रेष्ठ (त्रिककुत् नाम) त्रिककुत् नामक (ते पिता) तेरा पिता है।

भावार्थ:-

आंजन मणि अंजन तथा कतिपय अन्य खनिज एवं औषधियों के योग से बनती है। यह मणि गोली, सलाई या मूसली के आकार में निर्मित होती है। इसे पानी के साथ घिसकर मिश्री, दूध तथा मधु के साथ मिलाकर सलाई से आँखों में लगाया जाता है। अंजन के विषय में मंत्र में कहा गया है कि त्रिककुत् नाम का श्रेष्ठ पर्वत इसका पिता है, अर्थात् त्रिककुत् पर्वत पर यह उत्पन्न होता है। त्रिककुत् पर्वत वह कहलाता है, जिसमें किसी विशिष्ट आकृति में तीन शिखर होते हैं। इन पर सूर्य की किरणों का तथा सूर्यताप का प्रभाव पड़ता है। ये परस्पर इतनी दूरी पर होते हैं कि किसी समय सूर्य-किरणों तथा सूर्यताप का प्रभाव सब पर पड़ता है, किसी समय एक-दूसरे की छाया इन पर पड़ती है, किसी समय सूर्य ऐसी दिशा में चला जाता है कि किसी पर सूर्य का प्रकाश पड़ता है, किसी पर नहीं, और कभी सूर्य इस स्थिति में हो जाता है कि किसी भी शिखर पर सूर्य का प्रकाश नहीं पड़ता। फिर वर्षा, वायु, चाँदनी आदि पर्वत की अन्य परिस्थितियों का प्रभाव भी इन पर पड़ता है। इस कारण इस त्रिककुत् पर्वत का अंजन श्रेष्ठ माना जाता है। इसमें सूर्य, वायु, वर्षा, चन्द्र, नक्षत्र आदि सबके गुण होते हैं।

मन्त्र में आंजन मणि के तीन दास बताये गये हैं-तक्मा, बलास और अहि। दास शब्द उपक्षयार्थक दसु धातु से बनता है, जिसका एक अंर्थ विनाशक भी होता है। अतः वाक्य का अभिप्राय यह निकलता है कि आंजन मणि तक्मा, बलास और अहि-विष (सर्पविष) की नाशक है। तक्मा विविध प्रकार के ज्वरों को कहते हैं, बलास श्लेष्म-रोग के लिए प्रचलित है। सायण ने यहाँ बलास का अर्थ बल का क्षय करनेवाला संनिपात आदि रोग किया है। अहि विभिन्न प्रकार के साँप होते हैं। साँप आंजन मणि का दास है, इसका आशय होता है कि आंजन मणि सर्पविषों को दूर करती है।

❈❈❈

गतांक से आगे–

पुराणों को किसने बनाया?

लेखकः डॉ0 श्रीराम आर्य

कलियुगी पौराणिक पण्डितों का तो नग्न चित्र खींचकर रख दिया गया है, उन्हें साक्षात् राक्षसों का अवतार, नाना प्रकार के पाखण्डी मतों का प्रवर्तक जनवंचक, मिथ्यावादी, छली, प्रपंची, कुम्भीपाक नरक में से आने वाले व कुकर्मों के कारण पुनः उसी नरक में जाने वाले घोषित किया गया है।

हम नहीं समझ सके कि जिन ग्रन्थों में हमारे ब्राह्मण वर्ग की इस प्रकार की घोर निन्दा व अपमान किया गया हो, उनको धर्मशास्त्र व पूज्य ग्रन्थ वे कैसे मानते हैं?

यदि पौराणिक विद्वानों में जरा-सा भी स्वाभिमान शेष होता तो ऐसे ग्रन्थों के विरूद्ध सामूहिक आन्दोलन करके या तो उनका संशोधन कराते अथवा उन्हें सरकार द्वारा जब्त कराकर ही दम लेते।

हमारा विचार है कि वे लोग कदाचित् इसलिए खून का घूँट पीकर शान्त हो जाते हैं कि पुराणों ने इनकी जो वास्तविकता खोल दी है, यदि उन्होंने उसके विरूद्ध कोई शोर मचाया तो जनता यह कहेगी कि आखिर पुराणकारों ने गलत क्या लिखा है? पुराण की बात सत्य होने से अदालतें भी उन्हीं का पक्ष लेने पर विवश होंगी और इन विद्वानों को वहां भी मुँह की ही खानी पड़ेगी।

पुराणकारों ने वशिष्ठ ऋषि को रण्डी से, माण्डव्य को मेढ़की से, ऋषि श्रृंग को हिरनी से, वैशेषिक दर्शनाकार महर्षि कणाद को उल्लू से पैदा हुआ लिखा है।

पशु-पक्षियों से भी मनुष्य पैदा हो सकते हैं या नहीं? इस बात का परीक्षण हमारे पौराणिक विद्वानों को प्रत्यक्ष दिखाना चाहिए वरना जनता तो ऐसे ग्रन्थों के लेखकों को कोरा गप्पाष्टकी ही मानेगी।

कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति यह मानने को तैयार नहीं होगा कि महर्षि वेद व्यास जी जैसे प्रकाण्ड विद्वान की लेखनी से ऐसी मूर्खतापूर्ण गल्पों वाले पुराण भी लिखे जा सकते हैं।

अब हम पुराणों की कुछ मनोरंजक कथाओं को प्रस्तुत करते हैं, जिनको पढ़कर पाठक यह विचार कर सकेंगे कि ऐसी असम्भव बातों से युक्त पुराण ग्रन्थ महर्षि वेद व्यास जी कृत हो सकते हैं या नहीं?

सर्वप्रथम हम नरबलि, पशु बलि एवं श्राद्ध में मांस भक्षण के चन्द प्रमाण उपस्थित करते हैं।

पुराणों में पशु बलि का आदेश

कर्तव्येयं महा पूजा नानाबलि भिरादरात्।
छाग मेषादिमहिषैः सामिषान्नैस्तथैव च।। 19।।

–(महाभागवत पुराण, अध्याय 46)

अर्थात् दुर्गा की पूजा–बकरा, भेड़, भैंसा आदि के गोश्त तथा अन्न से करनी चाहिए।

पुराणों में मनुष्य बलि का आदेश

पितृ मातृ विहीन च युवकं व्याधिवर्जितम्।
विवाहितं दीक्षितं च परदार विहीनकम्।। 101।।
अजा रजं विशुद्धं च सच्छूद्रं मूलकं वरम्।
तद बन्धुभ्यो धनं दत्वा क्रीत मूल्यातिरेकत:।। 102।।
स्नाययित्वा च तं धर्मी स पूज्यवस्त्र चन्दनै:।
माल्यैर्धूपैश्च सिन्दूरैर्दधि गौरोचनादिभि:।। 103।।
तं च वर्ष भ्रामयित्वा चरद्वारेण यत्नत:।
वर्षान्ते च यमुत्सृज्य दुर्गायै तं निवेदयत्:।। 104।।
अष्टमी नवमी संधौ दद्यान्मायाति मेव च।
इत्येवं कथितं सर्व बलिदान प्रसंगत:।। 105।।
बलिं दत्वा च स्तुत्वा च ध्रत्वा च कवच बुध:।
प्रणम्य दण्डवद् भूमौ दद्याद्विप्राय दक्षिणम्।। 106।।

–(ब्रह्मवैवर्त पुराण प्रकृति खण्ड 2, नारद दुर्गा पूजा विधि बलि पशु लवण विशेषो नाम 64 वाँ अध्याय कलकत्ता)

अर्थात्– दुर्गा को बलि देने के लिये एक ऐसा युवक होना चाहिये जो माता पिता से रहित हो, विवाहित हो, दीक्षित किया हुआ हो तथा अन्य स्त्रियों से सम्बन्धित न हो।

बकरी की रज से विशुद्ध किया हुआ हो, अच्छे प्रकार के नौकरों से उसका पोषण किया गया हो। उसके बन्धुओं अर्थात् घर वालों को धन देकर उसे खरीद लिया जावे। उसे स्नान कराकर उसकी वस्त्र एवं चन्दन, धूप, सिन्दूर–गौरोचन आदि से पूजा की जावे।

फिर उसे नौकर के द्वारा यत्नपूर्वक भ्रमण कराया जावे वर्ष के अन्त में उसे दुर्गा के सामने बलिदान कर दिया जावे। उसका अष्टमी व नवमी के सन्धि काल में बलिदान किया जावे।

बलि देकर बुद्धिमान पुरूष दुर्गा की स्तुति करे और कवच धारण करें, पृथ्वी पर लेटकर दुर्गा को दण्डवत प्रणाम करें और पण्डितों को दक्षिणा देवें।

पुराणों में से यह पशुबलि एवं मनुष्य बलि देने के विधान हमने नमूने के तौर पर प्रस्तुत किये हैं। अब पुराणों के अन्दर मृतक श्राद्ध में भी पशु बलि का विधान देखें।

श्राद्ध में मांस भक्षण

हविष्य मत्स्य मासैस्तु शशस्य नकुलस्य च।
सौकरच्छागलैणेयरौरवैर्गवयेन च।। 1।।

और भ्र गव्यैश्च तथा मांस वृद्धया पितामहा:।
प्रयान्ति तृप्तिं मांसैस्तु नित्यं वाध्रीणसामिषै:।। 2।।
खड्ग मांसमतीवात्र कालशाकं तथा मधु।
शस्तानि कर्मण्यत्यन्त तृप्ति दानि नरेश्वर:।। 3।।

-(विष्णु पुराण अंश 3, अध्याय 16 गीता प्रेस का प्रकाशन)

अर्थ– हवि, मत्स्य, शशक अर्थात् खरगोश, नकुल, सूअर, बकरा, कस्तूरिया हिरण, काला हिरण, गाय और मेष के मांसों से तथा गव्य से पितृगण अधिक तृप्ति लाभ करते हैं और वाध्रीगणस पक्षी के मांस से सदा तृप्त रहते हैं।। 1-2।।

हे नरेश्वर! श्राद्ध कर्म में गेंडे का माँस कालशाक तथा मधु अत्यन्त प्रशस्त और अत्यन्त तृप्तिदायक हैं।। 3।।

समीक्षा– हे देवी-देवताओं की कल्पना और उनको जगत के माता-पिता बताना साथ ही उन पर मूक पशुओं का बलिदान, यही नहीं उन पर मनुष्यों की बलि देना, मृतक श्राद्ध के नाम पर निरीह जीवों को मार-मारकर खा जाना, यह सब स्पष्टतया पैशाचिक कर्म हैं।

सत्य एवं अहिंसावादी वेदज्ञ एवं योगी महर्षि वेदव्यास जी से यह आशा कभी नहीं की जा सकती है कि उन्होंने ऐसी गन्दी बातों से युक्त पुराणों का प्रणयन किया होगा।

भारत में मध्यकाल में अर्थात् महाभारत के बाद जब माँसाहार का प्राबल्य हुआ था, उस समय यज्ञों में भी गाय, घोड़ा, मनुष्य, बकरे आदि को काट-काटकर चढ़ाया जाने लगा था, उसी युग में इन गन्दी बातों से युक्त पुराणों का निर्माण हुआ था।

उस युग की प्रचलित उपरोक्त दूषित बलिदान की परम्परा के उदाहरण पुराणों में देखने को मिलने हैं, जिनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि "वर्तमान पुराण व्यासकृत नहीं हैं" अथवा उनमें प्रक्षिप्तांशों की इतनी भरमार है कि उनका सत्य स्वरूप प्रारम्भ में क्या था? यह निर्णय ही नहीं किया जा सकता है।

हिमालय पर ऊँचे वृक्ष

कदम्बस्तेषु जम्बूश्च पिप्पलो वट एव च।। 17।।
एकादश: शतायामा: पादपा गिरिकोतव:।
जम्बूद्वीपस्य सा जम्बूर्नाभ हेतुम हामुने।। 18।।
महागज प्रमाणानि जम्ब्वास्तस्या: फलानि वै।
पतन्ति भूभृत: पृष्टे शीर्य माणानि सर्वत:।। 19।।

-(विष्णु पुराण 2-2)

अर्थ– हिमालय पर्वत पर कदम्ब, जामुन और पीपल के ग्यारह-ग्यारह हजार योजन ऊँचे वृक्ष पताकाओं के समान हैं। इस द्वीप का नाम इसलिए जम्बू अर्थात् जामुन के नाम पर 'जम्बू द्वीप' है।

उन वृक्षों से बड़े हाथी के बराबर वाले जामुन के फल–फूल भूमि पर गिरकर सब ओर फैल जाते हैं।

समीक्षा– क्या व्यास जी जैसे विद्वान् से ऐसी आशा की जा सकती है कि उन्होंने ऐसे गपोड़े वाले पुराण बनाये होंगे?

राजा सुद्युम्न की कहानी

स कुमारो वनं मेरोरधस्तात्प्रविवेश ह।
यत्रास्ते भगवान रुद्रो रममाणः सहोमया।। 25।।
तस्मिन् प्रविष्ट एवासौ सुद्युम्नः परवीरहा।
अपश्यत्स्त्रियमात्मानमश्वं च वडवां नृप।। 26।।
तथा तदतृगाः सर्वे आत्मलिंग विपर्ययम्।
दृष्ट्वा विमनसोऽभूमन् वीक्षमाणाः परस्परम्।। 27।।

राजोवाच–

कथमेवं गुणोदेशः केन वा भगवान् कृतः।
प्रश्न मेनं समाचक्ष्वपरं कोतूहलं हि नः।। 28।।

अर्थ– राजकुमार सुद्युम्न ने सुमेरू पर्वत के नीचे वन में प्रवेश किया, जिसमें शिवजी पार्वती के साथ रमण करते रहे हैं।। 25।।

उस वन में प्रवेश करके वीर सुद्युम्न ने अपने को स्त्री रूप में देखा और अपने घोड़े को भी घोड़ा बना हुआ देखा।। 26।।

उसी प्रकार उसके साथ के सारे मनुष्यों ने भी आपस में एक–दूसरे को स्त्री बना हुआ देखा।। 27।।

यह सुनकर राजा पूछने लगे, भगवन! यह बताओ कि ऐसे गुण वाला देश कौन–सा है व किसने उसे ऐसा किया है? मेरे मन में बड़ा कौतूहल है।। 28।।

मर्दों को औरत बनाने के शाप की कथा

श्री शुक उवाच–

एक दा गिरीशं द्रष्टुमृषयस्तत्र सुवृताः।
दिशो वितिमिराभासाः कुर्वन्तः समुपागमन्।। 29।।
तान् विलोक्यांबिंका देवी विवासा ब्रिडिता भ्रशम्।
भर्तु रंकात्समुत्थाय नीवीमाश्वथ पर्यधात।। 30।।
ऋषयोऽपि तयोर्वीक्ष्य प्रसंग रममाणयोः।
निवृताः प्रययुस्तस्मान्नरनारायणा श्रमम्।। 31।।
तदिदं भगवाननाह प्रियायाः प्रिय काम्यया।
स्थानं यः प्रविशेदेतत् स वै योषिद भवेदितिः।। 32।।

–(शेष अगले अंक में)

गतांक से आगे–

प्रकाश मार्ग दिखाओ!

लेखकः–टी् एल् वासवानी

आर्यसमाज के गौरव के लिये यह कहा जा सकता है कि उसने समाज सेवा और शिक्षा का बहुत सुन्दर कार्य किया है। समाज की शाखायें वर्मा, ब्रिटिश अफ्रीका और फिजी में फैली हुई हैं, बहुत सी समाजें भारतवर्ष में हैं, युक्त प्रान्त और पंजाब का वायु मण्डल समाज से भरा हुआ है। समाज के स्कूल और अनाथालय हैं, कालेज और गुरुकुल है। समाज ने स्त्री शिक्षा और मद्यनिवारण के लिये भी काम किया है। उसने अछूतों को हिन्दुओं में मिलाया है और हिन्दू समाज में एक नया जीवन डाला है।

जो दयानन्द को संकीर्ण कहते हैं उन्होंने उसके जीवन का गलत अध्ययन किया है। यह व्यक्ति जिसे श्री केशवचन्द्र सेन, सर सैयद, कर्नल आलकाट और पादरी स्काट श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे, अनुदार नहीं हो सकता। कर्नल आलकाट दयानन्द के विषय में कहते हैं–'वे लम्बे कद के, गौरवपूर्ण अकृति वाल, और सुन्दर व्यवहारयुक्त थे।'

फिर वे कहते हैं–"स्वामी दयानन्द निस्सन्देह एक महान् व्यक्ति थे, संस्कृत के प्रगल्प विद्वान्, असाधारण पुरुषार्थी, संकल्प शक्ति युक्त, स्वावलम्बी अतएव वे मनुष्यों के नेता थे" पादरी स्काट दयानन्द के 'ओजस्वी आकार' का वर्णन करते हैं, सर सैयद एक दिन उनके पास आकर बोले कि 'यहां कुर्सी नहीं है'–दयानन्द के कहा कि 'आप को फर्श पर ही बैठने की असुविधा होगी' सर सैयद ने उत्तर दिया जो कि उन्हीं के योग्य था–"मुझे अभिमान है कि मैं एक सन्त के साथ फर्श पर बैठूंगा" 'थियोसोफिस्ट' जिसे शायद उस समय मैडम ब्लेवटस्को चलाती थीं। ऋषि को इस युग का महान् आर्य कहते हैं। जैसे 'विज्ञान' सार्वदेशिक है इसी प्रकार धर्म भी, धर्मों भी। धर्मों के आचार्य किसी एक जाति की सम्पत्ति नहीं होते। मैं नम्रतापूर्वक कहूंगा कि ऋषि दयानन्द केवल आर्यसमाज के ही नहीं हैं वह सारे भारतवर्ष के है–नहीं, सारे संसार के हैं, किसी लेखक ने कहा है कि 'प्रतिभा संस्कृति का फूल है' दयानन्द **'आर्य संस्कृति** का फूल था! इस संस्कृति का तत्व मनुष्यजाति की आध्यात्मिक एकता है। दयानन्द का 'जाति' और **'सम्प्रदाय'** में विश्वास न था किन्तु **भातृभाव** में उसका विश्वास था। उसके हृदय में वैदिक पुकार गूंज रही थी। "आओ एक दूसरे से मधुरवाणी बोलो मैंने तुम्हें समान इच्छा और समान मन वाला बनाया है।" वह अपने समाज में ईसाई और मुसलमानों को भी मिलाता है। एक उच्च जाति का मनुष्य सभा से जहाँ दयानन्द का व्याख्यान हो रहा है। एक कसाई को हटा देता है। वह उस सम्पन्न मनुष्य को धमकाते हुये कहते हैं–'कसाइयों के लिये भी मेरा सन्देश है' एक नाई उन्हें मोटी रोटी देता है। दयानन्द प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लेते हैं। एक वेश्या उन्हें समाधिस्थ अवस्था में देखकर प्रभावित होती है और अपने सुवर्ण के

आभूषण अर्पण करने लगती है वे कहते हैं कि 'मुझे आभूषणों की आवश्यकता नहीं, जाओ आगे से पापमय जीवन व्यतीत न करना' एक पैंशनभोगी सरकारी कर्मचारी उन्हें मिलते हैं, वे उससे कहते हैं। 'तुम ब्राह्मण हो तुम्हारे पूर्वज संसार के गुरु समझे जाते थे और अपना जीवन मनुष्यजाति की सेवा में बिताते थे। तुम्हें उनके पदचिन्हों पर चलना चाहिये। सेवा का व्रत ग्रहण करो और भीलों में जाकर काम करो।' एक वृद्धा स्त्री उन्हें मार्ग में मिलती है। वह चिथड़ों में लिपटी हुई है और कहती है 'कोई मेरा सहारा नहीं है। प्रभु तुम्हें आशीर्वाद देंगे, मुझे भोजन दो'! ऋषि की आंखों में आंसू आ जाते हैं वह अपने साथियों से कहते हैं-''एक समय था जब भारत सुवर्ण से भरपूर था। यहाँ इतनी विपुलता थी कि अनाथ और भूखे पाये भी न जाते थे। परन्तु आज इतनी दरिद्रता है कि एक भिखारिन स्त्री मुझसे मांगती है जो कि स्वयं भिखारी हूं'' तब वे एक साथी से उसे भोजन देने को कहते हैं।

ऋषि दयानन्द के हृदय में दीन और दलितों के लिये अपार प्रेम था। और इस प्रेम के बिना कोई किसी जाति को नहीं उठा सकता। सभायें, व्याख्यान, और कागजी शर्तों से कोई लाभ नहीं। स्वयं विद्या ही तपस्या और प्रेम के बिना शून्य है। युवको उठो, वे लोग-किसान, ग्रामीण, दीन और पतित तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं-हजारों और लाखों की संख्या में वे तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। उनके पास जाओ उन्हें कथा, कीर्त्तन वैदिक मंत्र और भारतीय इतिहास के वीरों के सन्देश सुनाओ। उनके समीप जाओ और उनके मनों तथा हृदयों में नव-भारत का निर्माण करो।

दयानन्द ने क्या-2 कार्य पूरा किया। इसे उसके बहुत से देशवासी भी नहीं जानते। हम लोगों के इस युग में उपकार भुला दिये जाते हैं। उसने एक नई जातीय जागृति को उत्तेजित किया। उसने आर्य सभ्यता के लिए समर्पण किया और वैदिक धर्म की एक बार फिर घोषणा कर दी।

मेरे विचार में इसका रहस्य एक वैदिक प्रार्थना में आ जाता है जो इस प्रकार है-'हमारा जीवन **समर्पण** के द्वारा शक्तिशाली बनें।

क्या ऋषि दयानन्द का जीवन समर्पण का जीवन नहीं है? एक प्राचीन यूनानी फिलास्फर से किसी ने पूंछा कि 'आपकी विद्या का रहस्य और स्रोत क्या है? उसने उत्तर दिया ''मैं इटली' ग्रीस, और अफ्रीका तक गया। अन्त में भारतवर्ष पहुंचा वहां मैंने एक 'नग्न' पुरुष देखा-उसके लिये 'ईश्वर एक महान् सत्ता' थी। उसके जीवन में आत्म समर्पण था। यह भारतीय मनुष्य ''बुद्धिमान् था।'' क्या यही बात ऋषि दयानन्द के विषय में नहीं दुहराई जा सकती?

यह संन्यासी, यह फकीर, विद्या का धनी, अपनी दरिद्रता में प्रसन्न नग्नरूप में उन लोगों को जो अपने प्राचीन उत्तराधिकारी को भूल चुके थे, उसका सन्देश सुनाने के लिये स्थान-2 पर घूमता फिरा। ऋषि दयानन्द के हर्ष का स्रोत ईश्वर वह महान् सत्ता था। यह 'भारतीय मनुष्य बुद्धिमान् था' उसके जीवन में आत्म समर्पण था।

आज बहुत से विज्ञान हैं-किन्तु कितने भारतीय युवक हैं जो सर्वोच्च विज्ञान-इस आत्मसमर्पण के अध्ययन के लिये तैयार हों? बहुत सी कान्फ्रेंस और बहुत से प्रस्ताव आज होते हैं-परन्तु कितने हृदयों

(शेष पृष्ठ सं. 14 पर)

क्रोधादि कषायों को वश में रखना

लेखकः बाबू सूरजभान वकील

जिस प्रकार ये पाँचों इन्द्रियाँ मनुष्य के पाँच तरह के अद्भुत औजार हैं कि जिनके द्वारा वह संसार की वस्तुओं के अनेक गुणों को जानता है और यदि उसकी कोई इन्द्रिय बिगड़ जाती है तो उसका उस इन्द्रिय विषयक ज्ञान भी लुप्त हो जाता है और वह कठिनाई में पड़ जाता है; बल्कि आँख और कान इन दो इन्द्रियों के बिगड़ जाने से उसका संसार में विचरना और जीना ही कठिन हो जाता है–इसी प्रकार क्रोध, मान, माया, लोभ, द्वेष, स्नेह, रंज, खुशी और भय आदि कषाय भी उसकी ऐसी प्रबल शक्तियाँ हैं कि जिनके द्वारा वह संसार के सब कार्य करता है। यदि उसमें ये शक्तियाँ न होतीं तो वह कुछ भी न कर सकता, बल्कि निष्क्रय होकर अंत में मर जाता। जिस प्रकार इन्द्रियों से सावधानी के साथ काम न लेने पर वे मनुष्यों पर अपना प्रभुत्व जमा लेती है और धीरे-धीरे उद्धत होकर मनुष्य से मनचाहा नाच नचाने लगती हैं, उसी प्रकार यदि इन लोभादिक शक्तियों से काम लेने में असावधानी होती है और उनकी पूरी–पूरी चौकसी नहीं की जाती है, तो ये शक्तियाँ भी इन्द्रियों से अधिक उद्धत हो जाती हैं–महा भयंकर बन जाती हैं और बहुत उपद्रव मचा देती है। इसलिए इन लोभ क्रोधादिक महान् शक्तियों–हृदय के इन जबरदस्त उफानों–को खूब सावधानी के साथ काबू में रखना, अपनी जरूरत के अनुसार उनसे काम लेना और सीमा से अधिक उभरने न देना बहुत जरूरी है। बल्कि अपने हानि–लाभ और सुख–दुःख के विचारों के द्वारा इस बात का पूरा–पूरा प्रबन्ध कर लेने की भी आवश्यकता है कि इन शक्तियों में से किससे कब कितना काम लिया जावे, अर्थात् हृदय के इन आवेगों या उफानों में से कब किस उफान को कितना उठाया जाय या कितना कौन दबाया जाय।

मनुष्य के हृदय में उठने वाले इन आवेगों या उफानों की ठीक ऐसी दशा है जैसी कि किसी कारखाने के एंजिन में माफ की होती है। कारखाने में पीसने, कूटने, दलने, फटकने, बुनने, कातने, औंटने, चीरने, फाड़ने, ठोकने, पीटने आदि अनेक कामों के लिए अलग–अलग कलें लगी होती हैं और वे सब कलें उस एक एंजिन की ताकत से ही चलती हैं। परन्तु उस कारखाने में ऐसा प्रबन्ध बँधा रहता है कि कारखाने वाला जिस समय जिस कल को चलाना चाहता है उसी में भाफ की शक्ति पहुँचा कर उसे चला देता है और जब चाहता है तब उसे बन्द कर देता है। बीच–बीच में वह अपनी जरूरत के अनुसार उस कल के वेग को न्यूनाधिक शक्ति पहुँचाकर मन्द या तेज भी कर देता है। मतलब यह है कि कारखाने की सब कलें उसके वश में रहती हैं, वह जब जिन–जिन कलों को चाहता है तब–तब उन्हें चला लेता है और जब जीमें आता है तब उन्हें बन्द कर देता है और अपनी इच्छानुसार उनसे काम लेता है। परन्तु ऐसा उत्तम प्रबन्ध होने पर भी जब वह कारखाने वाला जरा असावधान हो जाता है और किसी कल में जरूरत से

ज्यादा शक्ति पहुँचा देता है तो वह कल पहले तो उसी कार्य को नष्ट भ्रष्ट कर डालती है जो काम उसके द्वारा हो रहा हो, परन्तु जब वह कुछ और भी तेज हो जाती है तब वह अपने ही कल पुर्जे तोड़ने लग जाती है, और यदि बहुत ज्यादा गड़बड़ी मच जाती है तो वह भाप की शक्ति उस सारे कारखाने को तहस नहस कर डालती है और दूर-दूर तक धावा करके आसपास के मकानों को भी नष्ट कर देती है, और इस तरह सारे नगर भर में हाहाकार मचा देती है।

इस प्रकार मनुष्य भी एक बड़ा भारी कारखाना है। जीव कारखाने वाला है और मस्तिष्क उसका दफ्तर है, जिसमें बैठकर वह सब कार्य करता है और सबका हिसाब-किताब रखता है। पाँचों इन्द्रियाँ उसके पाँच जासूस या विशेषज्ञ हैं, जिनके द्वारा वह वस्तुओं के अनेक गुणों को जानता है और अपनी जरूरत के अनुसार उनको काम में लाता है। हृदय इस कारखाने का बड़ा भारी एंजिन है जिसमें हरवक्त भाफ उत्पन्न होती रहती है और वही भाफ क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, रंज, खुशी और भय आदि शक्तियों के रूप में प्रकट होकर मनुष्यरूपी कारखाने को चलाती है, परन्तु जब जीव गाफिल हो जाता है और मस्तिष्करूपी दफ्तर में बैठकर पूरी-पूरी सावधानी से काम नही लेता, या इन शक्तियों को अपने काबू में रखकर जरूरत के अनुसार उन्हें तेज या हल्की नहीं बनाता है और उनको अनियमित या अन्धाधुन्ध चलने देता है, तब ये शक्तियाँ मनुष्यरूपी कारखाने को नष्ट कर डालती है और उनके झपेटे में और भी जो कोई आ जाता है उनको भी वे भारी धक्का पहुँचाती हैं। इस तरह मनुष्य जाति के प्रबन्ध में एक भारी गड़बड़ मच जाती है और संसार में असंतोष और अशान्ति फैल जाती है।

मनुष्य की इन क्रोध मान आदि शक्तियों की पृथक्-2 रीति से परीक्षा करने पर जाना जाता है कि ये सभी एक खास हद तक उसका उपकार करने वाली हैं। सबसे पहले हमें मान के विषय में विचार करना चाहिए। मनुष्य को यह मान कषाय अनेक प्रकार की बुराइयों से बचाता है, उसके परस्पर व्यवहार चलाता है, आपस में विश्वास स्थापित करता है, अनेक प्रकार के ज्ञान और कला-कौशल सीखने को उसे उत्साहित करता है, रात दिन परिश्रम करने और आजीविका का बढ़ाने की ओर लगाता है, उससे बड़े-2 बहादुरी और चतुराई के काम कराता है और उसे सब तरह की उन्नति की ओर खींच ले जाता है। इसके विपरीत जिस मनुष्य में स्वाभिमान की मात्रा कम हो जाती है वह बिल्कुल ढीठ और बेशर्म बन जाता है और नीच से नीच कर्म करने तथा कर्महीन बन जाने से भी नहीं हिचकता है। वह दूसरों का धिक्कार या तिरस्कार सहन करके पराये टुकड़े तोड़ने में तनिक भी नहीं लजाता है। सच तो यह है कि जिसके हृदय में अपनी मान-मर्यादा का ख्याल नहीं है वह वास्तव में मनुष्य ही नहीं है; न तो उस पर किसी प्रकार का विश्वास ही किया जा सकता है और न उसका भरोसा ही। सच पूछो तो ऐसे आदमी से न किसी प्रकार का व्यवहार करना उचित है और न वह पास बिठलाने ही के योग्य है। क्योंकि जिसे अपनी इज्जत आबरू का ख्याल नहीं है-अपनी मानमर्यादा की सुधि नहीं है, उसे दूसरे की इज्जत बिगाड़ने या मान मर्यादा भंग करने में क्या देर लगती है।

परन्तु इस मान का अधिक बढ़ जाना भी बहुत हानिकारक है। क्योंकि अधिक मानी पुरुष अपनी ऐंठ ही में चलता है किन्तु दूसरों को सदैव दबाता रहताहै। उसकी इस चाल से अनेक आदमी उसके बैरी बन जाते हैं। इसके सिवा मानी पुरुष अपनी स्थिति, बल, आमदनी और जरूरतों को ख्याल न करके अपने से बड़ों का अनुकरण करने लग जाता है और अपने को बड़ा सिद्ध करने में अपना सर्वस्व लगा देता है। इसका फल यह होता है कि वह इस बड़प्पन के जाल में फँसकर अपनी असली मान-मर्यादा भी खो देता है, और जब उससे कुछ नहीं बन पड़ता है तब वह दूसरों से डाह करने लगता है। अर्थात् स्वयं दूसरों के बराबर उन्नति न कर सकने पर वह दूसरों की बढ़ती देखकर उससे मन-ही-मन जलने लगता है और उसे नीचे गिराने का निंद्य प्रयत्न भी करने लगता है। इतने पर भी जब उसका कोई प्रयत्न नहीं चलता, तब वह मन-ही-मन उसके बर्बाद हो जाने की भावना करता है और इसके लिए प्रतिदिन परमपिता परमेश्वर की स्तुति करके उससे यही विनय करता है कि 'हे प्रभो! उसका शीघ्र नाश कर दे।'

इस मान के बढ़ जाने पर मनुष्य अपनी जाति, घराने और पूर्व अवस्था के घमंड में आकर अपनी आजीविका के बहुत सुलभ और उत्तम-2 उपायों को भी पसन्द नहीं करता है और बेकार बैठकर अपनी पहली पूंजी को खा डालता है। अंत में बहुत शीघ्र भूखों मरने या भीख माँगने की नौबत आ जाती है-जिससे उसकी रही सही मान-मर्यादा भी नष्ट हो जाती है, और वह विवश होकर फिर अपने पेट पालने के लिए ऐसे-2 खोटे काम करने लगता है कि जिसे सुनकर आश्चर्य होता है-अर्थात् वह बिलकुल भ्रष्ट और निर्लज्ज बन जाता है। इसी प्रकार जिन लोगों को अपनी झूठी मान-मर्यादा बढ़ाने की धुन सवार हो जाती है वे-यह सोचकर कि धन से ही इज्जत बढ़ती है-धन प्राप्ति के लिए बड़े-2 अन्याय और कुकर्म करने लगते हैं। परन्तु ऐसा करने से वे शीघ्र ही किसी ऐसे झगड़े में फँस जाते हैं कि उन्हें जैल की हवा खानी पड़ती है और उनकी रही सही इज्जत और साख भी धूल में मिल जाती है। कहने का मतलब यह है कि झूठे मान के फेर में पड़कर मनुष्य स्वयं बर्बाद हो जाता है और दूसरों को भी नुकसान पहुँचाता है। इससे सिद्ध हुआ कि जिस प्रकार मनुष्य को अपने मान का ख्याल छोड़ देने से हानि होती है, उसी प्रकार उसके जरूरत से अधिक बढ़ जाने से भी उसे नुकसान पहुँचाता है, अतएव उसे उचित है कि वह सदैव अपनी विवेक बुद्धि से मान के सामंजस्य को बनाये रक्खे अर्थात् उसकी मर्यादा को न तो जरूरत से अधिक बढ़ने दे और न घटने दे।

इसी प्रकार यदि मनुष्य के लोभ न हो तो वह न तो संसार की वस्तुओं की प्राप्ति के लिए कोई प्रयत्न करे और न किसी वस्तु को सँभालकर रक्खे। मतलब यह कि उसकी गृहस्थी का ढाँचा ही बिगड़ जाय और वह पशु पक्षियों की श्रेणी में आ जाय। परन्तु लोभ की मात्रा बढ़ जाने पर भी उसकी जो दुर्गति होती है-उसे जो आपत्तियाँ उठानी पड़ती हैं वे किसी से छिपी नहीं है। यह मनुष्य अति लोभ में पड़कर गैरजरूरी वस्तुओं का संचय करता, हजार दु:ख झेलता और बड़ी जरूरत के समय भी उनको खर्च नहीं करता है। उनकी रक्षा के लिए अपनी जान निछाबर करता और उनकी प्राप्ति के लिए महा अन्याय और

नीच से नीच कर्म करने से भी नहीं चूकता है। न तो वह राजदंड से डरता है और न उचित अनुचित का ही विचार करता है। इस लोभ की प्रबलता ने संसार में ऐसा घोर उपद्रव मचा रक्खा है कि मनुष्य जंगल के हिंस्र पशुओं से भी अधिक दुष्ट और परापहारक बन गया है–वह दूसरों को हानि पहुंचाने, दूसरों के हक छीनने और दूसरों का माल हड़प जाने में जरा भी नहीं हिचकता है। मनुष्य जाति में अशान्ति फैलने का यह भी एक कारण है। प्रायः सभी मनुष्य जाति में अशान्ति फैलने का यह भी एक कारण है। प्रायः सभी मनुष्य अपना–2 स्वार्थ साधने और आपआप के स्वार्थ में पड़ गये हैं जिससे मनुष्यों के पारस्परिक व्यवहार का ढाँचा बहुत ही बिगड़ गया है। अतएव मनुष्य को उचित है कि वह अपनी लोभवृत्ति पर भी कड़ी निगाह रक्खे और कभी उसे सीमा से ऊपर नीचे न खिसकने देवे।

मान और लोभ के समान क्रोध भी मनुष्य की एक बड़े काम की शक्ति है। इस क्रोध के द्वारा ही वह अपने शत्रुओं को हटाता और अपनी मान–मर्यादा, धन–सम्पत्ति आदि की रक्षा करता है। परन्तु बात–बात पर क्रोध लाना, बिना जरूरत के उसका उपयोग करना और उसकी तेजी में आकर आपे से बाहर हो जाना या और अनुचित कार्य करने लगना बहुत बुरा है। अतएव क्रोध को भी सदैव अपने वश में रखना चाहिए। याद रक्खो कि जिस प्रकार घर में कोई जलाई हुई अग्नि घर की वायु को शुद्ध कर देती है, शरीर की अग्नि पसीने को निकालकर खून को साफ करती है, उसी प्रकार क्रोधाग्नि भी मनुष्य के वैरियों को दूर हटाती है और अनेक उपद्रवों से बचाकर उसे सुख शान्ति दिलाती है। परन्तु जिस प्रकार घर में जलाई हुई अग्नि अधिक भड़क जाने पर बेकाबू होकर घर को ही जला डालती है, शरीर की अग्नि अधिक बढ़ जाने से खून को सुखा डालती और अनेक प्रकार की बीमारियाँ पैदा करती है, उसी प्रकार क्रोधाग्नि के अधिक भड़क जाने पर भी बहुत बुरा नतीजा निकलता है। इसलिए क्रोध को अपने काबू में रखना और उसे सीमा से बाहर न बढ़ने देना बहुत लाजिमी है। इसके अतिरिक्त यह भी जान लेना चाहिए कि बात बात में बिगड़ना, हर समय रूठना, चिढ़चिढ़ा स्वभाव बनाना, सदैव नाक भी चढ़ाये रहना, रोष भरी बातें करना ये सब कमजोरी की निशानियाँ है। ऐसा करने से अपना कुछ भी गौरव नहीं रहता है और छछोरपन ही समझा जाता है। अतएव मनुष्य को हर समय प्रसन्नचित्त और हँसमुख रहना चाहिए, और बात–बात में क्रोध नहीं दरसाना चाहिए। इसके सिवा अपनी संतान को, शिष्यों को, नौकरों को या अन्य किसी अपने अधीन को सुधारने के लिए दंड देने में या न्यायाधीश बनकर अपराधी को सजा देने में कभी भूलकर भी क्रोध नहीं लाना चाहिए, बल्कि उसके सुधारने और दूसरों को उत्तम शिक्षा मिलने के ख्याल से यह काम बहुत शान्ति और विवेक के साथ करना चाहिए। ऐसे कामों का क्रोध से कोई सम्बन्ध नहीं है।

–(शेष अगले अंक में)

पृष्ठ सं. 10 का शेष–

में उस 'प्राचीन मंत्र' आत्म समर्पण का प्रोत्साहन है। यजुर्वेद इस 'जीवन' को 'समर्पण' रूप बतलाता है और समर्पण के साथ उस 'समर्पण के देवता' की पूजा करने का विधान करता है। एक बात का मुझे निश्चय है, भारतवर्ष रूढ़ियुक्त वाद विवादों से नहीं और न कागज के शर्त्त नामों से अपितु 'आत्मसमर्पण' के द्वारा महान् बन सकेगा, भारत का भावी इतिहास इसी की प्रतीक्षा कर रहा है। ❁❁❁

गतांक से आगे--

ब्रह्मचर्य–विज्ञान

लेखकः–जगन्नारायणदेव शर्मा

हमने ब्रह्मचर्य को ही तप सिद्ध किया है। प्राचीन काल में प्रधानतया यही तप साधा जाता था। हमारे मत की पुष्टि नीचे लिखे वैदिक मन्त्र से भी होती है–

"ब्रह्मचर्येण ततसा देवा मृत्युमुपाघ्नत।" –(अथर्ववेद)

ब्रह्मचर्य रूपी तप से देवों को अमरता प्राप्त हुई।

अब पाठक समझ गये होंगे कि तप और ब्रह्मचर्य में कुछ भी अन्तर नहीं। आजकल जो तप के नाम से प्रसिद्ध है, वह वास्तव में यही ब्रह्मचर्य था, जिसके लिये अनेक वर्ष तक लोग यत्न–पूर्वक तपस्या करते थे, और उसके निर्विघ्न अभ्यस्त हो जाने पर, ब्रह्मचर्य की प्राप्ति होती थी। एवं ब्रह्मचर्य सिद्ध हो जाता था।

योग और ब्रह्मचर्य

योगात्संप्राप्यते ज्ञानं, योगो धर्मस्यलक्षणम्।
योगो परन्तपोज्ञेयस्तस्माद् योगं समभ्यसेत्।। –(महामुनि)

योग से ज्ञान की प्राप्ति होती है–योग ही धर्म का रूप है, और योग ही परम तप माना जाता है। अतएव ऐसे योग का अभ्यास करना चाहिये।

महर्षि पतंजलि ने अपने शास्त्र में इस प्रकार योग का लक्षण किया है–

"योगश्चित्त–वृत्ति–निरोधः।" –(योगदर्शन)

चित्त की वृत्तियों को रोकने का नाम योग है। जब तक चित्त–वृत्तियाँ अपने अधिकार में नहीं हो जातीं, तब तक लाख उपाय करने पर भी रोके नहीं रुक सकतीं। चित्त–वृत्तियों को अधिकार में करने के लिये, मन की साधना की जाती है। यह मन की साधना बिना ब्रह्मचर्य के हो नहीं सकती। यही कारण है कि योग करने के पहले, ब्रह्मचर्य–व्रत का पालन करना पड़ता है। जिसका ब्रह्मचर्य स्थिर नहीं, वह पुरुष योग–भ्रष्ट होकर अपने अनुष्ठान से गिर जाता है। एक ब्रह्मचारी पुरुष में ही चित्त–वृत्ति को रोकने की शक्ति रह सकती है।

योग का उद्देश्य आत्मा और परमात्मा को प्राप्त करना है। उपनिषदों में आत्मा और परमात्मा में लीन होने के उपायों का वर्णन है। प्रमाण के लिये एक मन्त्र उद्धृत किया जाता है–

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा।
सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।।

अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो।
यं पश्यन्ति यतयः क्षीण दोषाः।।

सत्य से, तप से, पूर्ण ज्ञान से और अविचल ब्रह्मचर्य से आत्मा (ईश्वर) का लाभ हो सकता है। वह अन्तकरणः में ज्योतिर्मय और निर्मल रूप से विराजमान है। जो लोग सिद्ध और निष्पाप हैं, वे ही उसके दर्शन कर सकते हैं।

हमारे विचार से सत्य, तप और आत्मज्ञान सब योग से ही सिद्ध होते हैं। वह योग भी ब्रह्मचर्य पर स्थित है। इसलिये ब्रह्मचर्य ही सच्चा योग है। इसका निभाने वाला पुरुष ही कर्मनिष्ठ योगी है। जिस चित्त-वृत्ति निरोध से योग सिद्ध होता है, उसी से ब्रह्मचर्य का भी पालन किया जाता है।

योग-शास्त्र में योग के साधने की तीन क्रियायें या साधन इस प्रकार बतलाये गये हैं-

"तपः स्वाध्यायेश्वर-प्रणिधानानि क्रिया-योगः।"

तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान को क्रिया-योग कहते हैं। हमारे ब्रह्मचर्य में भी, ये तीनों क्रियायें प्रधानरूप से विद्यमान हैं। जिन आठ अंगों से योग सिद्ध होता है, उन्हीं के पालन से ब्रह्मचर्य को भी पूर्णता प्राप्त होती है।

अब पाठक समझ गये होंगे कि ब्रह्मचर्य एक प्रकार से योग भी है। जिसने ब्रह्मचर्य का पालन किया, उसने योग-साधन भी कर लिया।

सत्य और ब्रह्मचर्य

सत्येन धार्यते, पृथ्वी, सत्येन तपते रविः।
सत्येन वातिवायुश्च, सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्।।

सत्य से पृथिवी ठहरी हुई है, सत्य से सूर्य अपना प्रकाश करता है और सत्य से ही वायु चलती है। एक सत्य में सब कुछ प्रतिष्ठित है।

वास्तव में संसार का बीजरूप एक सत्य ही है। सभी पदार्थ में सत्य विराजमान है। जहाँ वह नहीं है, वहाँ कुछ भी नहीं रह सकता। जिस पदार्थ का सत्य नष्ट हो जाता है, वह स्वयं भी नाश को प्राप्त होता है। सत्य का ही दूसरा नाम अस्तित्व है।

इस शरीर का सत्य बल है-इसके भीतर रहने वाले आत्मा का सत्य ब्रह्मचर्य है। बल के न रहने पर शरीर और ब्रह्मचर्यसे हीन होने पर आत्मा का अस्तित्व नहीं रह सकता। जैसाकि उपनिषदों में लिखा है-

सत्य मेव जयते नानृतम्।
सत्येन पन्थाविततो देवयानः।।
येनाक्रमन्तृषयो ह्याप्तकामा।
यत्र तत्सत्यस्य परमंनिधानम्।।

सत्य की ही जय होती है, असत्य की नहीं। सत्य से ही देवों का मार्ग मिलता है। ऋषि लोग भी

सत्य के प्रभाव से सफल होते हैं, जहाँ सत्य की सत्ता है, वहाँ सब सुख है।

हमारे विचार से जिस सत्य का वर्णन ऊपर आया है, वह यही ब्रह्मचर्य है। जो पुरुष ब्रह्मचर्य का नाश करता है, वह अपने को सत्य से पृथक् करता है। इसके पालन से मनुष्य सत्य को अधिकार में कर लेता है, और वह सत्य उसको सुखी बनाता है।

हमारे भीष्म पितामह ने ब्रह्मचर्य को सत्य शब्द से अभिहित किया है। अपनी प्रतिज्ञा की दृढ़ता प्रकट करने के लिये, उन्होंने सत्य का ही नाम लेकर, ब्रह्मचर्य को महत्व दिया है।

विक्रमं वृत्रहा जह्याद्धर्मं जह्याच्च धर्मराट्।
नत्वहं सत्यमुत्स्रष्टुं, व्यवसेयं कथंचन।। –(महाभारत)

चाहे इन्द्र अपने पराक्रम को छोड़ दें, और धर्मराज अपने धर्म को छोड़ दें, पर जिस सत्य (ब्रह्मचर्य) को मैंने धारण किया है, उसे कदापि नहीं छोड़ सकता।

अब पाठक सत्य और ब्रह्मचर्य की एकता और रहस्य को समझ गये होंगे।

जिस पुरुष के हृदय में सत्य की कुछ भी प्रतिष्ठा है–जो सत्य का पालन करना चाहता है, वह इस ब्रह्मचर्य रूपी सत्य का पालन कर सद्गति को प्राप्त है।

कर्त्तव्य और ब्रह्मचर्य

"**जयं प्राप्नोति संग्रामे, यः सुकार्याण्यनुष्ठते।**" –(विदुरनीति)

सत्कर्तव्यों का पालन करने वाला ही पुरुष संग्राम में विजय लाभ करता है।

कर्त्तव्य मेव कर्त्तव्यं, प्राणैः कण्ठगतैरपि।
अकर्त्तव्यं न कर्त्तव्यं, प्राणैः कण्ठगतैरपि।। –(नीति–शास्त्र)

अपने कर्त्तव्य का पालन प्राणों के निकलने तक करना चाहिये। पर जिसे हम अकर्त्तव्य समझते हैं, उसे प्राणों के जाने पर भी करना योग्य नहीं।

कर्त्तव्य से ही समाज की स्थिति है–कर्त्तव्य से ही दोषों का नाश होता है–कर्त्तव्य के पालन से ही मनुष्य को सुख शान्ति मिल सकती है, और कर्त्तव्य ही सबका सार है। कर्त्तव्य से हीन होने पर कदापि सुख नहीं मिलता। अकर्त्तव्य के समान पाप भी नहीं।

हम ब्रह्मचर्य को ही सब कर्त्तव्यों का कर्त्तव्य मानते हैं। संसार के सारे कर्त्तव्य एक ब्रह्मचर्य की आवश्यकता रखते हैं। ब्रह्मचर्य के बिना एक भी कर्त्तव्य नहीं हो सकता।

"**कर्त्तव्यं सर्व–साधकम्।**" (सूक्ति)

कर्त्तव्य ही मनुष्य के सब कार्यों को साधने वाला है। हमारा ब्रह्मचर्य भी सबका साधने वाला सिद्ध हो चुका है। अतएव वह पूर्ण रूप से कर्त्तव्य कहा जा सकता है। इस कर्त्तव्य के सामने विश्व के सभी कर्त्तव्य मूक हो जाते हैं। इस ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला पुरुष ही सच्चा कर्त्तव्यशील है, और वह सब सुखों को सहज में प्राप्त कर लेता है।

तैत्तिरीयोपनिषद् में आचार्य-द्वारा कर्त्तव्य की बहुत ही उत्तम परिभाषा की गई है, और उसी वचन में कर्त्तव्य-पालन की आज्ञा भी ब्रह्मचारी को दी है। उसे हम यहाँ उद्धृत करते हैं-

"यान्यनवद्यानिकर्माणि तानि सेवितव्यानि, नो इतराणि।" -(उपनिषत्)

जो निर्दोष कर्म हैं, वे ही कर्त्तव्य हैं। अकर्त्तव्य का सेवन करना योग्य नहीं वरन् मूर्खता है।

इससे यह विदित होता है कि जितने दोष-रहित कर्म हैं, सबकी गणना कर्त्तव्य में है। उनका पालन करना शास्त्र-संगत है। वे सभी कर्त्तव्य ब्रह्मचर्य के बिना नहीं सध सकते। अतः इस प्रकार से भी ब्रह्मचर्य सब कर्त्तव्यों का मूल है।

अब पाठक भलीभाँति समझ गये होंगे कि 'ब्रह्मचर्य' ही श्रेष्ठ कर्त्तव्य है, अतएव जिसे कर्तव्य का पालन करना हो, वह ब्रह्मचर्य का पालन करे।

यम-नियम और ब्रह्मचर्य

"अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।" -(योगदर्शन)

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह-ये पाँच यम कहलाते हैं।

मन, वचन और कर्म से किसी को कष्ट न देने का नाम 'अहिंसा' है। जैसा कुछ देखा-सुना और जो मन में हो, उसे उसी रूप में कहने को 'सत्य' कहते हैं। पराये धन का लोभ न करना 'अस्तेय' है। उपस्थेन्द्रिय का संयम तथा वीर्य-रक्षा का नाम 'ब्रह्मचर्य' और शरीर-यात्रा के निर्वाह से अधिक भोग-सामग्री का एकत्र न करना 'अपरिग्रह' कहलाता है।

अब हम महर्षि पतंजलि के कहे हुये यमों के लाभों का वर्णन करते हैं। वे इस प्रकार हैं-

"अहिंसा-प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैर-त्यागः।" -(योगदर्शन)

'अहिंसा' के पालन से वैर-भाव का त्याग होता है। अर्थात् सब जीवों पर दया करने से भी प्रेम करते हैं।

"सत्य-प्रतिष्ठायां क्रिया-फलाश्रयत्वम्।" -(योगदर्शन)

'सत्य' के पालन से सभी कार्य सिद्ध होते हैं। वचन के प्रभाव से दूसरों तथा अपने को सुख मिलता है।

"अस्तेय-प्रतिष्ठायां सर्व-रत्नोपस्थानम्।" -(योगदर्शन)

'अस्तेय' के पालन से सब कुछ स्वयं प्राप्त हो जाता है। अभिप्राय यह है कि वह सबका विश्वासपात्र बनता है।

"ब्रह्मचर्य-प्रतिष्ठायां वीर्य-लाभः।" -(योगदर्शन)

"ब्रह्मचर्य' का पालन करने से वीर्य का लाभ होता है। अर्थात् उसे शारीरिक और मानसिक बल की प्राप्ति होती है।

"अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः।" -(योगदर्शन)

-(शेष अगले अंक में)

मुक्तक

रचयिता: रोहित आर्य, मोबा0 8958682489

गद्दारों को फाँसी दे दो, दो जनता को अभयदान,
नाता तोड़ो नीच पाक से, और मचा दो घमासान।
आतंकी को पकड़ जेल में, बिल्कुल भी मत बन्द करो,
काट गर्दनें चौराहों पर, सीधा उनका अन्त करो॥

तू है मेरी प्रिये, तू मेरी जान है,
है मेरी जिन्दगी, मेरी पहचान है,
पर मैं कैसे रखूँ, तुझको दिल में भला,
मेरे दिल में तो बस, हिन्दुस्तान है॥

नहीं जरूरत आज देश को, बापू आशाराम की,
नहीं जरूरत देश को है अब, दाउद और सद्दाम की,
नहीं जरूरत आज देश को, लालू और सुखराम की,
देश को आज जरूरत है फिर, राम, शिवा, घनश्याम की॥

अगर नपुंसकता ना छोड़ी, देश नहीं बच पायेगा,
अब तक सीमा पर चिल्लाता, कल छाती पै आयेगा,
क्यों तुम सोच रहे गीदड़ के, घास पात के खाने की,
छोड़ अहिंसा करो तैयारी, इनकी लाश बिछाने को॥

युद्ध का वातावरण पैदा यहाँ जो कर रहे हैं,
युद्ध का विष घोलने में जो न बिल्कुल डर रहे हैं,
है यही इतिहास हमसे जो भी आकर के भिड़ा है,
ना तो जीवन ही बचा है ना ही उनके सर रहे हैं॥

जग से प्यारी भारत माता, आओ इसे निखारें हम,
बिगड़ी है जो हालत इसकी, आओ इसे सुधारें हम,
इसके हमने जीवन पाया, खेले-कूदे बड़े हुए हैं,
इसके लिए जियें, मर जायें, तन-मन इस पर वारें हम॥

आजादी पाने की खातिर लाखों ने कुर्बानी दी,
और क्रान्ति के रक्त सिन्धु में खूँ से नई रवानी दी,
क्रान्ति ललक पैदा करने को बलिदानी वो कहानी दी,
देश की आजादी की खातिर अल्हड़ मस्त जवानी दी॥

जो सोने न दे दुश्मन को वो हाहाकार बन जाओ,
पार्थ के तुम धनुष वाली पुनः टंकार बन जाओ,
जिसे सुनके पसीना छूटने लग जाये दुश्मन का,
वो बब्बर शेर की ललकारती हुंकार बन जाओ॥

जिसने गलत निगाहें डालीं, देख नहीं वो पायेगा,
जिसका मुखड़ा इधर हुआ है वो गर्दन को कटवायेगा,
भारत माँ के दामन पर गर, कोई हाथ को डालेगा,
उस पापी उस नीच, दुष्ट का, अन्त कर दिया जायेगा॥

जो व्यक्ति निज मातृभूमि का कर सकता सम्मान नहीं,
जिसको अपने देश, संस्कृति, भाषा का है ध्यान नहीं,
जो व्यक्ति अपने अतीत पै, गर्व नहीं कर सकता है,
चाहे कुछ भी हो जाये पर है सच्चा इंसान नहीं॥

देशद्रोहियों के शोणित से, भरो खून के नालों को,
समझा दो तुम अमरीका, बीजिंग और पिण्डी वालों को,
पुनः उठा लो राणा वाले, रक्त चूसते भालों को,
बुरी नजर डालें भारत पर, जिन्दा गाढ़ों सालों को॥

जिसने गलत निगाहें डालीं, देख नहीं वो पायेगा,
गलती से भी पैर रखा तो, पैर को काटा जायेगा,
भारत माँ का दामन छुआ, जिसने कभी भूलकर भी,
उस पापी उस नीच, दुष्ट का, अन्त कर दिया जायेगा॥

धर्म ध्वजा को फहराने को, रिश्ते–नाते त्यागे हैं।
प्राण जाय पर वचन न जाये, हम इस पथ पर आगे हैं।
पुत्र मोह से धर्म बड़ा है, यह दिखलाया दशरथ ने,
सम्मुख खड़े भ्रात–पितु–गुरु को, मार गिराया पारथ ने॥

सिंहासन की चाटुकारिता, करने वाले लोग हो तुम,
आतंकी और अपराधी से, डरने वाले लोग हो तुम,
हमको तुमसे जरा नहीं, आशा है न्याय को पाने की,
अपनी माँ का चीर हरण तक, करने वाले लोग हो तुम॥

सियासतदां ही इस आवाम् को अक्सर लड़ाते हैं,
कि कौमी एकता से ये पसीने छूट जाते हैं,
ये अपनी राजनैतिक रोटियों को सेकने के हित,
सियासी भेड़िये हैं जो यहाँ दंगे कराते हैं॥

जलाने शत्रुओं के दुर्ग को, अंगार बन जा तू,
शिवा, प्रताप सांगा का, भयंकर वार बन जा तू,
कोई डाले कुदृष्टि गर, मेरे भारत के आँचल पर,
तो पीने को लहू दुश्मन का, इक तलवार बन जा तू॥

हमारी जान हिन्दी में, हमारी शान हिन्दी में,
हमारी भारती का दिव्य गौरव गान हिन्दी में,
कोई हिन्दु, कोई मुस्लिम यहाँ सिख और ईसाई,
मगर बसता है हम सबका ये हिन्दुस्तान हिन्दी में॥

पाकिस्तान होश में आजा, वरना तू पछतायेगा,
रौद्र रूप गर धारेंगे तो, तू डरकर थर्रायेगा,
बार–बार छोड़ा लेकिन इस बार मिटा देंगे हस्ती,
देख तिरंगा दिल्ली के संग पिण्डी में लहरायेगा॥

है ये गर्व हमको ये जहान मिला है,
भारतीय होने का गुमान मिला है,
कुरबानी उन शहीदों की न भूलना कभी,
जिनकी वजह से हमको संविधान मिला है॥

गुलामी ही जो सहनी थी लड़े क्यों तुम फिरंगी से,
दिलाने देश को मुक्ति, बने तुम कितने जंगी थे,
हैलो, हे, हाय टाटा और बाय–बाय करते रहते हो,
भला क्यों सौतेला व्यवहार करते हो तुम हिन्दी से॥

अकबरुद्दीन ओवैसी जैसे लोगों को जबाव

हमको रोज लड़ाने वाले, अपनी बन्द जुबान तू कर,
दोजख भी न नसीब होगा, कम से कम अल्लाह से डर।
राणा और शिवाजी वाला खून अगर खौलाया तो,
श्रीराम ने क्रोधित होकर अपना धनुष उठाया तो,
श्रीकृष्ण का चक्र सुदर्शन हाथ में फिर से आया तो,
अर्जुन का गाण्डीव तन गया हनुमत् गदा उठाया तो,
तेरी क्या औकात ओवैसी पता नहीं चल पायेगा,
रावण की भाँति रे मूरख वंश नाश हो जायेगा,
और कौरवों के समान तू मिट्टी में मिल जायेगा।
लाश पै तेरी रोने वाला भी कोई ना पायेगा।
इसीलिए तुझको चेताता मत राणा का क्रोध जगा।
और शिवा का क्रोध जगा कर अपनी मौत को आप बुला।

पृथ्वीराज अगर हुँकारा सहन न तू कर पायेगा।
भारत की तो छोड़ पाक में पता न तेरा पायेगा।
चेतक की टापों से तेरे मुँह का खोल बदल देंगे।
इतिहास की तो हस्ती क्या है, हम भूगोल बदल देंगे।
डमरू वाले शिवशंकर का नेत्र तीसरा खुला अगर,
हाथों में त्रिशूल उठा तो तू काँपेगा थर-थर-थर।
तेरे जितने भाई बन्धु वो भी तुझको शरण न दें।
भारत माँ के चरणों में फिर चन्दा तारे आके झुकें।
हनुमान बजरंग बली का मत बल हमको याद दिला,
जिसके भय से सागर काँपा, टूट गये पत्थर व शिला,
लंका तेरी जल जायेगी, छेड़ नहीं तू अब हमको।
अपनी बुद्धि सीधी कर ले याद किया कर तू रब को।
नहीं तो घुटने के बल चल तू क्षमा माँगने आयेगा।
क्षमा माँग के अरे नराधम जिन्दा तू बच पायेगा।
वीर भरत के हम हैं वंशज, क्यों हमको ललकारत है।
जो शेरों के दाँत है गिनता लड़ता और पछाड़ता है।
ऐसे वीरों से ये भारत दुनियाँ में सिरमौर बना।
मान पड़ी तो कहाँ छिपेगा पहले कोई ठौर बना।
वरना शान्त से भाव से तू अब अच्छे और बुरे को तोल,
धर्म के अन्धेपन को छोड़कर भारत माता की जय बोल।
जिस थाली में अब तक खाया उसमें अब न छेद तू कर,
नमक हरामी अच्छी नहीं है, अच्छे बुरे में भेद तू कर॥
देशवासियों को आपस में लड़वाने का यत्न कर रहा,
खूनी खेल खेलवाने को तू कितना प्रयत्न कर रहा।
भीषण रक्तपात होगा फिर क्या तुझको अन्दाजा है।
सैंतालीस का जख्म अभी तक बिल्कुल ताजा-ताजा है।
तेरे कारण अपने देश में तपन नहीं होने देंगे,
हमें लड़ाने वाला पूरा स्वप्न नहीं होने देंगे,
तुझको हम अपने भारत में दफन नहीं होने देंगे।
बिस्मिल और अश्फाक उल्ला की गाथा तुझको याद नहीं,

अब्दुल हमीद तुझे सुनकर के रोता होगा आज कहीं।
गद्दारी क्यों मन में आती मत न जाफर मीर तू बन,
प्रेम सौहार्द्र बढ़ाने वाला रहीम तू बन, कबीर तू बन॥

नेताओं के घोटाले

भागमभाग मचा तेरे भाई, अब नेताजी आये हैं,
और चीज की बातें छोड़ो, चारे तक को खाये हैं।
इनके आने की खबरों से काँप कलेजा उठता है,
इनके रहते ही तो प्यारा देश हमारा लुटता है।
इनको जिम्मा दिया था भाई जाओ देश संभालो तुम,
नहीं कहा था ईंटें पत्थर चारे तक को खालो तुम।
पर अपने नेताओं ने तो अक्षय पात्र लिये हाथों में,
घोटालों के दर्द निरन्तर हमें दिय हैं सौगातों में।
कौमनवेल्थ कभी होता है और कभी होता हैं टूजी,
कोलगेट का एक भयानक दाग मिला है ताजी-ताजी।
मँहगाई का प्यारा तोहफा ये अक्सर हमको देते हैं,
अर्थव्यवस्था देश की नाजुक हो गई है हमसे कहते हैं।
पर इनकी अपनी मौजों में कोई कमी नहीं आई है,
इनके अपने बाप की नहीं जनता की ये कमाई है।
घोटालों को करके पैसा स्विस बैंक में भेज रहे हैं,
अपनी लाशों को ढकने को पैसों का कर ढेर रहे हैं।
मेरी समझ नहीं आता है इतने धन का क्या ये करेंगे,
जनता की मेहनत की कमाई छाती पर रखकर के मरेंगे।
कब तक क्षमा करेंगे इनको अंग-अंग आहत करते हैं।
आस्तीन के साँप बने हैं हर पल हमको ये डसते हैं॥

सत्साहित्य का प्रचार-प्रसार राष्ट्र की सर्वोत्तम सेवा है।

सफलता का पहिला साधन
''काम''

लेखकः-केदारनाथ गुप्त

यह सभी जानते हैं कि लगातार अध्यवसाय ही सफलता की कुंजी है और काम में जुटे रहना ही सफलता का पहिला साधन है। आलसी मनुष्य को सांसारिक झगड़ों के कारण जीवन भार हो जाता है। वह जीवित रह ही नहीं सकता अवश्य मर जायेगा। प्राय: लोग कह बैठते हैं कि लगातार परिश्रम और निर्मल, निराकार पवित्र आत्मा में क्या सम्बन्ध है, क्या वेदान्त त्याग और शांति का उपदेश देकर हमें आलसी नहीं बनाता? नहीं यह बिल्कुल गलत है। लोगों ने त्याग के अर्थ को नहीं समझा यही कारण है कि वे ऐसी-ऐसी बिना सिर पैर की शंकायें किया करते हैं।

वास्तव में काम क्या है? वेदान्त के अनुसार काम करना ही आराम है। यह एक लोक विरुद्ध और आश्चर्य जनक कथन प्रतीत होता है किन्तु वेदान्त इसी बात का उपदेश करता है। परिश्रम करने वाले की ओर जरा आँख उठाकर देखिये दूसरे लोग कहेंगे कि वह काम में जी तोड़कर लगा हुआ है परन्तु यदि उससे पूछा जाय तो वह यही कहेगा कि मैं अपनी समझ से कुछ नहीं कर रहा हूँ। दूर से देखनेवालों को इन्द्र धनुष में बहुत से रंग दिखलाई पड़ते हैं किन्तु यदि वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाय तो वहां रंग इत्यादि कुछ नहीं है। नेपोलियन, वाशिंगटन या अन्य योद्धाओं की ओर दृष्टिपात कीजिये जब वे घमासान युद्ध कर रहे हों। मालूम पड़ेगा कि शरीर तो अपने आप काम कर रहा है किन्तु उन्हें कुछ खबर नहीं। उनकी आत्मायें अपने अस्तित्व को भूल जाती हैं। वे प्रशंसा की भूखी नहीं रहती। अत: इस प्रकार का अविरत काम ही योग के ऊँचे दरजे तक पहुंचाने में आप की सहायता कर सकता है।

वेदान्त कहता है कि अविरत काम के द्वारा आप अपने छोटे शरीर को भूल जायं। शरीर और मस्तिष्क को साथ-साथ इस प्रकार लगा दें कि परिश्रम बिल्कुल मालुम ही न पड़े। कवि उसी समय अच्छी कविता कर सकता है जब वह यह भूल जाता है कि कविता मैं कर रहा हूँ। उस मनुष्य से जाकर जरा पूछिये जिसको कभी हिसाब के गूढ़ प्रश्नों के हल करने का संयोग हुआ हो। तुरन्त ही कहेगा कि जिस समय ''यह काम मैं कर रहा हूँ।'' ऐसा विचार मेरे हृदय से निकल जाता है मेरे सब प्रश्न उसी समय हल हो जाते हैं और मेरी सारी कठिनाइयां दूर हो जाती हैं। जितना अधिक मनुष्य अपने आपको भूलेगा उतनी ही अधिक खूबी के साथ वह काम कर सकेगा।

इस प्रकार वेदान्त उपदेश करता है कि सच्चे काम द्वारा अपने अस्तित्व को भूल जावे और जीवन की प्रत्येक बातों को उस महान् शक्ति के सच्चे सिद्धान्तों पर छोड़ दो जिसे परमेश्वर कहते हैं। विचारशील,

दार्शनिक, कवि, वैज्ञानिक अथवा कोई अन्य मनुष्य अपने को चारों ओर से खींचकर जब काम में तन मन से लग जाय यहां तक कि उसे शरीर की भी सुध बुध न रहे तब कहना चाहिये कि उसने वेदान्त के असली तत्व को समझा है। उसी समय गायकों में अग्रगण्य परमात्मा भी बाजे रूपी शरीर और मस्तिष्क को अपने हाथ में लेकर सुन्दर स्वरीली और मधुर राग निकालने लगेंगे और लोग भी कहेंगे कि अमुक व्यक्ति को परमात्मा का आभास हुआ है। वस्तुत: उसमें और कोई नई बात नहीं हुई। वह केवल अपना पराया भूल गया है और काम करने का उसे कुछ ख्याल ही नहीं रह गया। अत: एकाएक अभ्यास में वेदान्त जब परिणित किया जाता है तभी सब सफलतायें मिला करती हैं।

कोई आवश्यकता नहीं कि आप वनों में जाकर वेदान्तिक योग सीखने के लिये निरर्थक तपस्या करें। जिस समय आप काम में डूब जायं उस समय आप अपने को शिव की मूर्ति और योग का दादा समझें। वेदान्त के अनुसार यह शरीर आपका नहीं है। आप भी तो प्रत्यक्ष देखते हैं कि जब आप इस सिद्धान्त की सत्यता को महसूस करते और अविरत काम के कारण शरीर और मस्तिष्क से कोई सम्बन्ध नहीं रखते तभी आपको सच्चा आनन्द मिलता है।

काम किसे कहते हैं। इसकी व्याख्या एक दीपक या रोशनी द्वारा की जा सकती है। एक आइना अथवा तेल से जलनेवाले लैम्प को हाथ में रखिये। उसमें से चकाचौंध करनेवाली चमकती हुई सुन्दररोशनी निकलेगी। बतलाइये तो सही लैम्प में इतनी चमक कहां से आई। उत्तर दीजियेगा अविरत काम द्वारा अपनी सत्ता को भूलने के कारण। लैम्प यदि तेज और बत्ती बचाने का प्रयत्न करे तो स्वयं अंधेरा हो जायगा और असफलता के अतिरिक्त सफलता हाथ नहीं लगेगी। लैम्प को सफलता प्राप्त करना यदि स्वीकार है तो जलना पड़ेगा और तेल बत्ती की चिन्ता छोड़ देनी पड़ेगी। उसी प्रकार यदि आप चाहते हैं कि हमारी उन्नति हो तो नित्यश: उक्त परिश्रम करके अपने शरीर पट्टों और मस्तिष्क को काम की आग में भून डालिये और सोते जागते उठते बैठते केवल काम करने ही की धुन में रहा कीजिये। रोशनी (कान्ति) आपके द्वारा स्वयं निकलेगी। तेल और बत्ती जलाने अथवा दूसरे शब्दों में अंत:करण से शरीर और मस्तिष्क को भुला देने ही का नाम काम है।

सब सच्चे कामों की सिद्धि तभी होती है जब हम अपने आपको भूल जाते हैं। भारतवर्ष के राज राजेश्वर अकबर आजम के दरबार में एक बार दो शूरवीर सगे भाई गये और कहने लगे महाराज हमें नौकरी दीजिये। बादशाह ने पूछा आप क्या जानते हैं? बादशाह ने कहा अपनी वीरता का परिचय दीजिये। उन्होंने अपने चमकते हुये भाले निकाल लिये और आमने सामने मुंह करके खड़े हो गये। प्रत्येक ने भाले की तेज नोंक दूसरे की छाती पर रक्खी और हँसते हुये बड़े आनन्द के साथ एक दूसरे की ओर दौड़ पड़े। भाले शरीर में घुसने लगे, वे न हिले न डुले और न घबड़ाये। उनकी जीवात्मायें जाकर स्वर्ग में मिल गईं और शरीर रक्त पात करते हुये पृथ्वी पर गिर पड़े। सचमुच उन्होंने वीरता का एक बड़ा आश्चर्य जनक सबूत बादशाह को दिया। यह उदाहरण इस बात को सिद्ध करता है कि सच्चे काम की सिद्धि केवल

उसी समय होती है जब काम करने वाला अपने शरीर की आहुति कर देता है। शहद की मक्खियाँ अपने जीवन से हाथ धोकर ही डंक मारा करती हैं। प्लेहो ने ठीक कहा है"कि वह मनुष्य जो अपने आप का स्वामी है कविता के दरवाजे को वृथा खटखटाया है।"

अतः उन्नति और सफलता योग को कार्य रूप में लाने ही से मिला करती है। अविरत काम और उत्कट परिश्रम सांसारिक मनुष्य के लिये सबसे बड़ा योग है। जब तुम समझोगे कि हम काम नहीं कर रहे हैं। उसी समय दुनिया के लोग कहेंगे कि तुम बड़े काम करने वाले हो।

किस प्रकार और किस स्थिति में सफलता के साथ काम करने का अभ्यास हमें हो सकता है। काम काम चिल्लाना सहज है परन्तु करना बड़ा कठिन है। हरेक चाहता है कि मैं बड़ा चित्रकार बन जाऊँ; हरेक चाहता है कि मैं सबसे अच्छा गाना गाने लगूं। किन्तु हरेक जो चाहता है सो नहीं हो सकता। क्या कारण है कि आप काम से झिझक उठते हैं। क्या कारण है कि आप काम में डट जाते हैं। आपने नहीं देखा कि जब आपने काम करने का विचार किया तो प्रायः काम नहीं हो सका और जब नहीं किया तो अच्छा हो गया। इससे मालुम होता है कि हमारे ऊपर कोई ऐसी वस्तु अवश्य है जो काम करने की शक्ति को थांमें रहती है। जब मनुष्य प्रातः बिस्तरे से उठता है तो उसका मस्तिष्क एक निराले ही ढंग का रहता है। वह कलम उठा लेता है और धड़ाधड़ कविता और गूढ़ लेख लिखने लगता है। चित्रकार जब सुन्दर चित्र खींचना चाहता है तो परिश्रम करने पर भी नहीं खींच सकता। किसी दिन प्रातः उसमें एक विचित्र शक्ति उत्पन्न हो जाती है और वह सुन्दर चित्र खींचने लगता है। क्यों यही बात है न?

हम देखते हैं कि कोई महानशक्ति अवश्य है जो तुम्हारी काम करने वाली शक्तियों को पूर्ण रूप से काम में लगाये रहती है। यदि आप उस शक्ति (चित्तवृत्ति) को प्रतिपादित करलें तो आप सदैव प्रसन्न रह सकते हैं और आपका किया हुआ काम भी सम्पूर्ण और सुन्दर हो सकता है। योग बतलाता है कि वह शक्ति अथवा चित्तवृत्ति और कुछ नहीं है। केवल प्रकृति और ईश्वरीय नियमों के साथ चलने, आत्मा में मस्त रहने और स्वार्थवासना पूर्ण शरीर से विलग रहने ही का दूसरा नाम है। इस प्रकार छिपी हुई आंतरिक ज्योति या शक्ति को ढूंढ़ निकालने और उसके उपयोग करने ही से बड़े बड़े आश्चर्य जनक काम हो सकते हैं।

एक चित्रकार जब सड़क पर चलता है तो उसे बहुत सी सूरतें दिखलाई पड़ती हैं। किसी की आंखें और किसी की ठुड्ढी देखकर वह मोहित हो जाता है और उनका चित्र एकाएक अपने हृदय में खींच लेता है। जब कोई मनुष्य उसके यहां तस्वीर खरीदने आता है तो वह उसके बालों को हृदयंगम कर लेता है। वह बेचारा तस्वीर लेकर चला जाता है और नहीं जानता कि मेरे बालों की तस्वीर चित्रकार ने अपने हृदय में खींच ली है। दूसरा आदमी चित्रकार से कोई काम कराने के लिये आता है। वह उसके कानों को हृदय में अंकित कर लेता है। बेचारा आदमी नहीं जानता कि मेरे कानों का चित्र खींच लिया गया है। इस प्रकार चित्रकार का मस्तिष्क आप से आप काम करता रहता है। वह जब दूसरों की आंख, ठुडढी, नाक को चुराने

लगता है तो उसे यह ख्याल ही नहीं रहता कि मैं चुरा रहा हूँ। उसका काम स्वयं होता रहता है। कुछ दिन पश्चात् वह अपने कमरे में बैठ नाक, आंख, ठुड्ढी सब मिलाकर एक सुन्दर चित्र तैयार करता है जो असली को भी मात करता है। इतना अच्छा चित्र क्यों बना? "मैं यह काम कर रहा हूँ" केवल यह भाव और अभिमान को छोड़ने ही से। जिस समय चित्रकार ने घृणा अथवा प्रेम के वशीभूत होकर दूसरी ओर चित्त लगाया उसी समय उसका काम खराब हुआ। आपसे आप काम करनेवाली शक्ति क्षीण हुई और उत्साह की जगह आशक्ति अथवा घृणा ने अपना स्थान जमाया। परिणाम यह होगा कि मस्तिष्क अपने वश में न होने के कारण वह भिन्न-2 अंगों का चित्र न खींच सकेगा, असली योग से हाथ धो बैठेगा और चित्र खींचने की शक्ति जहां की तहां हो जायगी।

अत: जितना ही आपका काम आपसे आप होता जायगा, जितना ही "मैं कर रहा हूँ" इस भाव को आप भूलते जाइयेगा, जितना ही स्वामित्व की मात्रा आप में कम होती जायगी, जितना ही प्रलोभनों से आप खिंचे रहियेगा, जितना ही इस शरीर से आपका सम्बन्ध कम रहेगा उतनी ही अधिक सफलता आपको उत्तरोत्तर मिलती जायगी। योग कहता है काम कर्त्तव्य समझ कर करो। बाधाओं और फल की कुछ भी परवाह न करो, साधनों को एकत्रित करो और केवल काम करना ही अपना लक्ष्य बनाओ। आत्मा को शांत रक्खो और शरीर से बराबर काम किये जाओ। स्वार्थोत्पन्न बेचैनी ही के कारण काम खराब होता है। इसलिये शांति और निर्वाण की इच्छा से ही काम करना अपना ध्येय बनाओ। ❁❁❁

महापुरुषों की जयन्ती

झूलेलाल	9 अप्रैल
कस्तूरबा गांधी	11 अप्रैल
गुरु तेगबहादुर	14 अप्रैल
बाबासाहब अम्बेडकर	14 अप्रैल
महावीर स्वामी	19 अप्रैल
महात्मा हंसराज	19 अप्रैल
महावीर हनुमान	22 अप्रैल
अनुसुइया	26 अप्रैल

1 अप्रैल	गुडफ्राइडे
7 अप्रैल	विश्व आरोग्य दिवस
8 अप्रैल	नवसृष्टि संवत्सर
13 अप्रैल	जलियाँवाला बाग दिवस
19 अप्रैल	वैज्ञानिक आर्यभट्ट

(प्रथम उपग्रह भारत ने छोड़ा 1975)

महापुरुषों की पुण्यतिथि

मंगल पाण्डे	8 अप्रैल
वीर खुदीराम	12 अप्रैल
डॉ0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन	17 अप्रैल
तात्या टोपे	18 अप्रैल

शीघ्र प्रकाशित होने वाली पुस्तकें

श्रीमद् भगवद् गीता (एक सरल चिन्तन)	प्रेस में
चार मित्रों की बातें	प्रेस में
गृहस्थ जीवन रहस्य	प्रेस में
भारतीय संस्कृति के तीन प्रतीक	प्रेस में
संन्ध्या रहस्य	प्रेस में
बालक जो महान बने	प्रेस में
शान्ता	प्रेस में

समय का सद्व्यय

लेखकः पण्डित माधवराव

प्रत्येक दिन हमारे जीवन का एक अंश है

प्यारे विद्यार्थियो ! सबसे पहला कर्तव्य शारीरिक स्वास्थ्य की रक्षा है। बिना निरोगता के किसी प्रकार की उन्नति यथेष्ट समय में कभी हो नहीं सकती। परन्तु यदि हम केवल स्वस्थ रहकर अन्य उपयोगी बातों की ओर दुर्लक्ष करें तो भी हमारा मानवी जीवन सफल नहीं हो सकता, क्योंकि यह जीवन अनेक बातों का मिश्रण है अर्थात् हमारी सांसारिक सफलता के अनेक अंग हैं। यदि आरोग्यता उन्नति का मूल है तो समय का सदुपयोग करना भी उन्नति का एक प्रधान और अत्यावश्यक अंग है।

यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो हमको ईश्वर ने सबसे अधिक कीमती वस्तु 'समय' ही दी है। परन्तु यदि हम पक्षपात रहित होकर स्वीकार करें तो कहना पड़ेगा कि हम किसी भी वस्तु का, समय से अधिक, दुरुपयोग नहीं करते। बहुधा लोग धन-सम्बन्धी बातों में थोड़ा बहुत विचार किया ही करते हैं परन्तु वे समय की कुछ परवा नहीं करते। लेकिन समय धन से भी अधिक मूल्यवान् है। गया हुआ धन मेहनत करने से फिर भी मिल सकता है, भूली हुई विद्या पठन से फिर भी आ सकती है, बिगड़ा हुआ स्वास्थ्य भी कभी-कभी औषध द्वारा सुधर सकता है समय फिर कभी नहीं मिल सकता। इंग्लैंड की जगद्विख्यात महारानी एलिजावेथ की जब मृत्यु समय निकट आया तब वह चिल्ला उठी "यदि कोई मुझे क्षण भर के लिए बचा दे तो वह असंख्य धन पावे।" परन्तु अब पश्चात्ताप करने से क्या हो सकता था! अपने जीवन काल में तो उसने ऐसे सैकड़ों 'क्षण' की कुछ परवाह नहीं की थी। अब चाहे वह असंख्य धन और सारा राज्य दे देती तो भी गया हुआ समय फिर कैसे मिल सकता था? यदि कुछ मिल सकता था तो पश्चात्ताप!! स्मरण रहे कि समय की कीमत न समझने के कारण एक दिन हमें भी घोर पश्चात्ताप करना पड़ेगा। किसी ने सच कहा है-

**"The moments we forgo
Eternity itself cannot retrieve."**

जिन 'क्षणों' को हम खो देते हैं उन्हें हमें फिर दिलाने की शक्ति संसार में किसी को नहीं है। गया हुआ समय न तो बुलाने से आता है, न खरीदने से मिल सकता है यदि समय इतना बहुमूल्य है तो हमें उचित है कि हम एक पल भी व्यर्थ न जाने दें।

समय का महत्व तो इतना भारी है, फिर हम उसे खो कैसे देते हैं? केवल अपनी असावधानी और टालाटूली की आदत से। देखिए (1) हम सबेरे का समय यह सोच कर नष्ट कर डालते हैं कि इस

समय के काम को हम दोपहर में कर लेंगे। इसका मतलब तो यही होता है कि हमारे पास सौ रुपये हैं। जिनमें से हम पचास रुपयों को फेंक दे सकते हैं! सबेरे के काम को दूसरे समय के लिए टाल देने में उस काम के होने में तो संशय रहता ही है, पर साथ–साथ हममें सुस्ती और टालटूल करने की आदित भी बढ़ती जाती है। (2) बहुत से लोग अपना समय पहनने ओढ़ने और अपने स्वांग बनाने में ही खराब कर डालते हैं। इन्हें रात दिन हजामत और पोशाक की ही फिकर पड़ी रहती है। लेकिन इस से लाभ क्या होता है? हाँ, ये लोग चिकने अवश्य दीखने लगते हैं, पर इतने से कुछ नहीं होता। शरीर और कपड़ों की सफाई पर ध्यान तो बेशक देना चाहिए, परन्तु इसी में अपने जीवन की सार्थकता नहीं माननी चाहिए। (3) बहुत से आदमी अपना बहुत सा समय नाम मात्र के हँसी खेल में नष्ट कर डालते हैं और उसे मनोविश्राम कहा करते हैं। यह ठीक नहीं है। उदाहरणार्थ हमें भोजन के समय थोड़ा सा दूध भी मिलना चाहिए, परन्तु सिर्फ दूध के भरोसे हमारा काम नहीं चलेगा, हम दुबले हो जायेंगें। इसी तरह जिस प्रकार के मनबहलाव से हमारी अधिक प्रीति होगी उसमें हम आनन्द के साथ बहुत अधिक समय भी नष्ट कर दिया करेंगे। (4) युवावस्था को हम "आनन्द करने में" और "मजा उड़ाने में" बुरी तरह से खो देते हैं। हमारा सारा दिन बाहियात कामों में करने में जाता है। थोड़ा यहाँ वहाँ घूमें, थोड़ा सा गपशप लड़ाते रहे, थोड़ा आराम करते रहें और दिन बीत चला। परन्तु इसे भी याद रखना चाहिए कि "सुबह होती है, शाम होती है। योंही उम्र तमाम होती है।"

यदि कुछ लिखने पढ़ने की इच्छा हुई भी तो एकाध सड़ियल किताब को निकाल लिया और पढ़ते रहे। परन्तु जब मन थका रहता है अथवा अन्य बातों में लगा रहता है तब पढ़ने से कुछ लाभ नहीं। (5) यदि कोई निकम्मी किताबों के पढ़ने में समय नष्ट करता है तो कोई पढ़ने की उचित रीति न जानने के कारण (अच्छी किताबों को भी पढ़कर) अपना समय खोता है। अनेक विद्यार्थी ऐसे मिलेंगे जो अपनी वर्तमान अवस्था से कुछ भी सम्बन्ध न रखने वाली पुस्तकों को पढ़ा करते हैं। इससे कुछ भी लाभ न होगा।

इसी तरह हम अनेक प्रकार से समय को खो दिया करते हैं। पहले तो वह थोड़ा सा ही मालूम पड़ता है परन्तु जब हम अपने जीवन के समाप्ति–शिखर पर चढ़कर देखते हैं तब समय के ऐसे अनेक 'छोटे–छोटे" टुकड़े इधर उधर व्यर्थ बिखरे हुए दिखाई देते हैं। विचार करने की बात है कि जिन क्षणों को छोटा समझ कर हम व्यर्थ खो देते हैं उन्हीं 'छोटे' क्षणों को उपयोग में लाकर कोई मेहनती आदमी एक दो नई भाषाओं को सीख लेता है। इस अवनत भारतवर्ष ही में आज ऐसे कई उद्योगी पुरुष मिल सकते हैं जो नौकरी करते हुए ग्रन्थ सम्पादन का काम कर रहे हैं, अथवा जो अन्य व्यवसाय के साथ साहित्य–सेवा, देश–सेवा और परोपकार जैसे महापवित्र कार्यों के लिए भी समय बचा लिया करते हैं। देशमान्य दादाभाई नौरोजी, माननीय मदनमोहन मालवीयजी, लाला लाजपतराय, लोकमान्य बालगंगाधर तिलक, महामति रानडे, पूजनीय गोपालकृष्ण गोखले, श्रीयुत सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, कर्मवीर मोहनदास कर्मचन्द गाँधी इत्यादि इस बात के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि संसार में जितने

प्रसिद्ध विद्वान् हुए हैं उनकी सफलता की कुंजी वास्तव में उनके समय के–प्रत्येक क्षण के–सदुपयोग ही में है। उनमें से अधिकांश लोग बिना विशेष स्वाभाविक और जन्म–सिद्ध गुण के भी, केवल अपने अचल परिश्रम के–हर एक पल के उचित उपयोग के–कारण अपना नाम इतिहास में अमर कर गये हैं। ऐसे आदमियों से इतिहास भरा पड़ा है। यदि वे प्रत्येक पल को बहुत छोटा और तुच्छ समझकर त्याग देते तो अपने समस्त जीवन भर कुछ भी नहीं कर पाते।

उपर्युक्त बातों से यह सिद्ध हो चुका कि हम क्षण क्षण को उपयोग में लाकर आश्चर्यकारी कार्य कर सकते हैं। इससे यह प्रकट होता है कि आज कल के लोग फुरसत नहीं है कहकर केवल अपनी सुस्ती बतलाया करते हैं। यह कथन केवल स्वार्थियों को शोभा दे सकता है। जो आदमी समय की कमी की शिकायत किया करते हैं उनमें से अधिकांश, सच पूछो तो, समय का मूल्य ही नहीं जानते। समय बचाना चाहो तो अवश्य बचा सकते हो, केवल इच्छा होनी चाहिए। बहुत से मनुष्य ऐसे भी होते हैं जो एकाध अच्छा काम करने के लिए 'बढ़िया मौका' देखते बैठे रहते हैं। यह भी ठीक नहीं है। अच्छे कार्य को प्रारम्भ कर ही देना चाहिए, उत्तम अवसर देखते बैठे रहने से केवल समय नष्ट होगा। अवसर और समय तो वही उत्तम है जिसमें उत्तम कार्य प्रारम्भ किया जाय। हाँ एक बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिए कि किसी भी काम को एकाएकी क्षणिक जोश में आकर नहीं कर डालना चाहिए। इससे कार्य की सिद्धि नहीं होगी। किसी भी काम को धीरे–धीरे और थोड़ा–थोड़ा ही करो परन्तु उसे नित्य दृढ़ता के साथ करो, फिर तुम्हारे काम की सफलता में किसी प्रकार का सन्देह नहीं रह सकता। और काम करने से हमें लाभ भी दो प्रकार का होता है। एक तो हमारा इच्छित कार्य पूरा हो जाता है, दूसरा, हममें काम करने की योग्यता बढ़ती जाती है। बस, इसीसे हम समझ सकते हैं कि आलसी मनुष्य से परिश्रमी मनुष्य कैसे और क्यों अधिक काम कर सकता है। इसका उदाहरण लीजिए। आप किसी कामकाज में लगे हुए मनुष्य के पास जाइए और उससे एक चिट्ठी लिखने को कहिए। वह तुरन्त ही चिट्ठी लिख देगा, परन्तु आप एक आलसी मनुष्य को एक चिट्ठी लिखने के लिए दिन भर का भी अवकाश दीजिए तो भी वह एक चिट्ठी तक नहीं लिख पावेगा। उसे एक चिट्ठी लिखने के लिए दो चार दिन अथवा एक सप्ताह चाहिए।

किसी काम को पूरा करके ही छोड़ना चाहिए–अधूरा बीच में छोड़ देने से कार्य पूरा नहीं होता। इतना ही नहीं, किन्तु इससे अधूरा काम करने की बुरी आदत भी पड़ जाती है। एक पत्र सम्पादक ने अपने एक मित्र लेखक से एक दिन कहा कि क्यों भाई! तुम तो छपने के लिए एक भी लेख नहीं देते। रात दिन लिखते तो बहुत रहते हो। झट लेखक ने कागजों का एक गट्ठा लाकर पटक दिया। उसमें कई विषयों पर लेख थे, परन्तु पूर्ण उनमें से एक भी न था। उन अधूरे लेखों के पढ़ने से इतना अवश्य मालूम हो जाता था कि लेखक सचमुच अपूर्व विद्वान् है। लेकिन किस काम का? इस पन्ने में एक कविता प्रारम्भ की गई है, उस पन्ने में ज्योतिष सम्बन्धी अपूर्ण लेख है, वहाँ पर एक उन्नति विषयक लेख प्रायः खत्म होने को आया है, एक अन्य पृष्ठ में 'कर्तव्य' पर भी लिखा गया है, जिस पर थोड़ा सा ही लिखना बाकी है। सारांश

एक भी लेख पूर्ण नहीं है। ऐसे काम करने से क्या लाभ! इससे तो समय की हत्या मात्र होती है। इससे तो अच्छा यही होता कि किसी भी एक काम को अच्छी तरह से पूरा कर डालते।

अब प्रश्न यह रहा कि किस उपाय से यह अमूल्य समय व्यर्थ न जाने पावे। इसके उत्तर में सिर्फ इतना ही कहना पड़ेगा कि जिस आदमी के "हर काम के लिए समय और हर समय के लिए काम" नियत रहेगा उसका एक क्षण भी व्यर्थ नहीं जाने पावेगा। प्रिय विद्यार्थियो, यह बात कहने सुनने में जितनी सरल है उतनी ही उससे भी बढ़कर सुनने में जितनी सरल है। उतनी ही और उससे भी बढ़कर करने में महाकठिन है। बहुतेरे लोगों से इस नियमितता का पाठ पढ़ते नहीं बनता। यह पाठ कठिन है, परन्तु समय का सदुपयोग केवल इसी तत्त्व पर अवलम्बित है। इसलिए इस पाठ को, हजार बाधाओं और तकलीफों के होते हुए भी, अवश्यय पढ़ना पड़ेगा। करो एक ही काम, परन्तु उसे उसके उचित और नियत समय पर करो। जो आदमी नियत समय पर ब काम किया करता है उसके सदाचारी होने की अधिक सम्भावना रहती है। ऐसा आदमी अपनी प्रतिज्ञा कभी नहीं तोड़ता। नियत समय पर काम करनेवाले को सदा शान्ति –सुख मिलता है, इसलिए हर एक समय के लिए कुछ न कुछ उपयोगी कार्य नियत कर रक्खो। जब तुम्हारे चौबीस घन्टे यथाक्रम बंट जायेंगे तब न तो तुम्हें बुरी बातों के सोचने का ही अवसर मिलेगा और न तुम ऐसा काम कर सकोगे जिससे तुमको दु:खित अथवा लज्जित होना पड़े। परन्तु एक बात है, समय को अच्छी तरह से बाँटना पड़ेगा; उसकी व्यवस्था पूर्ण और समुचित रीति से करनी होगी। वेग से घूमने वाला पहिया एक बड़े भारी यन्त्र को चला सकता है परन्तु उस पहिये की एक खूँटी टूटी तो फिर न तो वह स्वयं कुछ काम का रहता, न वह यंत्र ही कुछ काम दे सकता है। दोनों बेकाम हो जाते हैं। ठीक इसी तरह नियत समय पर काम करने वाला मनुष्य यदि एक भी मिनट खो बैठता है तो उसका सारा कार्य–रूपी यन्त्र का क्रम बिगड़ जाता है।

प्राय: लोग कहा करते हैं कि मनुष्य के सुख–दु:ख का कारण उसका मन ही है, और यह है भी सच बात। हमारे मस्तिष्क का स्वाभाविक धर्म है कि कुछ न कुछ काम करते रहना। हम पर केवल इतना ही निर्भर है कि हम अपने मन को अच्छे विचारों की ओर दौड़ावें या बुरे की ओर। जिधर की लगाम ढीली होगी उधर ही यह घोड़ा (मन) दौड़ेगा। वह पथरीली और कँटीली राह से चलने में नहीं डरता। अपनी शरीर–रक्षा के लिए उसे ठीक रास्ते पर चलाना हमारा काम है। प्राय: बचे हुए समय में अनेक मानसिक विकार उत्पन्न हुआ करते हैं इसलिए फालतू समय को भी किसी न किसी तरह उपयोग में लाना चाहिए। ऐसे समय में हम चाहें तो किसी मित्र से मुलाकात कर सकते हैं, कोई मनोरंजक खेल खेल सकते हैं, किसी प्राकृतिक दृश्य का सुख लूट सकते हैं, कोई उपयोगी पुस्तक पढ़ सकते हैं अथवा स्फूर्ति और स्वास्थ्य–जनक शारीरिक कार्य भी कर सकते हैं। प्राय: देखा जाता है कि ऐसे समय में (जब कि मन को कुछ भारी काम नहीं करना पड़ता और वह स्वतन्त्र रहता है) हमारे मन में अचानक कुछ भावपूर्ण और सुखदायक विचार आप ही आप उत्पन्न हो जाते हैं, जो एकान्त में बैठकर इच्छा करने पर भी नहीं ज्ञात होते, इसलिए हमें

ऐसे अवकाश के समय में भी कागज पेंन्सिल अवश्य रखना चाहिए क्योंकि शायद हम इन अमूल्य विचारों को फिर भूल जायँ और पश्चात्ताप करें।

समय का सद्व्यय अनेक उपायों से किया जा सकता है। परन्तु इसे ध्यान में रखना चाहिए कि अपने दैनिक कार्यक्रम का विभाग किये बिना समय का सद्व्यय होना असंभव सा है। समय का सदुपयोग करने के लिए यह एक अच्छी रीति है कि प्रातःकाल सोकर उठने पर हमें इस बात पर बहुत ध्यान देना चाहिए कि आज हमें दिन भर क्या क्या करना है। फिर सोते समय निष्पक्षभाव से इस बात की भी आलोचना कर लेनी चाहिए कि हमने सब कामों को उचित रीति से और उचित समय किया है या नहीं। यदि नहीं किया है तो उसका कारण हमारी सुस्ती तो नहीं है। आत्म-निरीक्षण का स्वभाव विद्यार्थी-दशा ही में सफलतापूर्वक डाला जा सकता है। इस स्वभाव में अपने गुण-दोषों को ढूँढ़ निकालने और आत्मोन्नति करने की विलक्षण शक्ति है। बहुतेरे लोगों का जीवन आत्म-निरीक्षण के अभाव ही से दुःखदायक हो जाता है। अतएव यदि विद्यार्थियों को अपने वर्तमान और भावी जीवन-संग्राम में सफलता प्राप्त करने की इच्छा हो तो उन्हें अभी से आत्म-निरीक्षण का अभ्यास करके यह देख लेना चाहिए कि हम अपने समय का प्रतिदिन सदुपयोग कर रहे हैं या दुरुपयोग। समय के महत्व के विषय में फ्रैंकलिन साहब का यह वाक्य सदा ध्यान में रखने योग्य है- "Dost thou love life ? then do not squander time, for that is the stuff life is made of." अर्थात् क्या तुम्हें अपनी जान प्यारी है? यदि है तो समय को नष्ट मत करो क्योंकि तुम्हारा जीवन समय ही से बना हुआ है।

अन्त में थोड़े शब्दों में, मनुष्य के जीवन की सार्थकता के विषय में, यही कहा जा सकता है कि हम ईश्वर और मनुष्य के प्रति अपने कर्तव्यों को पहचानें, आत्म-निरीक्षण और आत्म-शासन का पाठ सीखें तथा अपने समय का ऐसा सदुपयोग करें जिससे हम अपने कुटुम्ब, समाज और देश के लिए किसी तरह उपयोगी हो सकें। यथार्थ में जीवन उसी मनुष्य का सफल होता है और वही मनुष्य जीवन-संग्राम में सफलता प्राप्त कर सकता है जो इन कामों में अपना तन, मन, धन सब अर्पण कर दें। ❁❁❁

सत्य प्रकाशन के पुनः प्रकाशित उपलब्ध प्रकाशन

वैदिक स्वर्ग की झांकियाँ	मूल्य 40)	दयानन्द और विवेकानन्द	मूल्य 15)
बाल सत्यार्थ प्रकाश	मूल्य 30)	बाल मनुस्मृति	मूल्य 12)
यज्ञमय जीवन	मूल्य 30)	इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ	मूल्य 12)
मील का पत्थर	मूल्य 20)	ओंकार उपासना	मूल्य 12)
भ्रांति दर्शन	मूल्य 20)		

श्रद्धा से ज्ञान और ऐश्वर्य की वृद्धि

श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि।। –(ऋ0 10। 151। 1।।)

बाल–सुहृदर्य! यह स्वाभाविक बात है, मानी हुई बात है कि जब तक किसी पर हमारी श्रद्धा न हो, भक्ति न हो, विश्वास न हो, हम उसकी बात नहीं सुनते, और अगर सुनते भी हैं तो उसका हम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, कोई असर नहीं होता। इसलिये यदि अपने गुरुओं के लिये तुम्हारे हृदयों में श्रद्धा और भक्ति नहीं, तो तुम्हारी विद्या के फलबती होने में सन्देह है। ऋषि–कुमार बड़े गुरु–भक्त होते थे। 'समित्पाणि' गुरु की सेवा में उपस्थित होते थे। 'समित्पाणि' का अर्थ है सूखी लकड़ी जिसके हाथ में हो। तुम हँसोगे कि जिन्हें तुम ऋषि–कुमार कहते हो, वे तो बड़े वहशी जान पड़ते हैं। पत्र नहीं, पुष्प नहीं, फल नहीं, वस्त्र नहीं, अन्य भेट की सामग्री नहीं, सूखी लकड़ी भी कोई भेट की वस्तु है?

मित्रो! यह हँसी की बात नहीं। इसमें बड़ा रहस्य छिपा हुआ है। पहली बात तो यह है कि यह समय भेट देने का नहीं। जब विद्यार्थी पढ़ लिख कर होशियार हो जाते थे उस समय यथाशक्ति गुरु–दक्षिणा मनमानी देते थे। इस युग के पथ–प्रदर्शक ऋषि दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने अलोकिक गुरु दक्षिणा दी। इस समय इतना ही बता देना काफी होगा कि सूखी लकड़ी इस बात का संकेत था कि गुरु जी महाराज, ज्ञान–रूपी अग्नि के भंडार हैं, वे कृपा करके अपनी एक चिंगारी से अपने शिष्यों में जो शुष्क लकड़ीवत हैं ज्ञान–रूपी अग्नि की ज्योति जगमगा दें, विद्याध्ययन की अग्नि उनके हृदयों में प्रज्वलित कर दें। देखा? कैसी नम्रता! कितनी विलक्षण श्रद्धा!! कैसी अद्‌भुत गुरु भक्ति!!! यही कारण है कि राम मर्यादा पुरुषोत्तम बने; श्री कृष्ण योगेश्वर कहलाए; लक्ष्मण–जती प्रसिद्ध हुए; अर्जुन का गाण्डीव चमका; भीष्म पितामह ने मनचाही मृत्यु प्राप्त की। जो बात कल सम्भव थी, वह श्रद्धा, भक्ति, प्रयत्न और उद्योग से आज भी असम्भव नहीं। ❁❁❁

पाठकों से नम्र निवेदन

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका के उन पाठकों से निवेदन है जिन्होंने वर्ष 2015 का शुल्क अभी तक जमा नहीं कराया है वे वर्ष 2016 के वार्षिक शुल्क के साथ शीघ्र ही **'सत्य प्रकाशन'** कार्यालय को भेजकर जमा करायें ताकि पत्रिका व विशेषांक सुचारू रूप से आपको प्राप्त होते रहें।

–व्यवस्थापक

मान्यमतिः

1. पवित्र, विचित्र, ज्येष्ठ और सर्वश्रेष्ठ परमात्मा को पहचानो और उसकी ही उपासना करो।
2. प्रतिदिन उपासना के अनन्तर उससे उसको ही माँगो, नान्यत्।
3. परमात्मा सदा सबको प्राप्त है। सदोष अन्तःकरण में उसकी प्रतीति नहीं होती।
4. शुद्ध मन से अल्प समय के लिए भी परमेश्वर का स्मरण सर्व सांसारिक सुखों से अच्छा है।
5. जो उस उपास्य का उपासक हो जाता है फिर समस्त संसार उसको अपनाता है।
6. परमेश्वर के स्मरण से मृत्यु मर जाता और आत्मा संसार सागर से तर जाता है।
7. वह तेरे पास है, तू उसको बाहर ढूँढ़ता है, इसी भूल ने तुझे भुलाया है।
8. परमात्मा के ध्यान से लोक और परलोक दोनों का सुधार हो जाता है।
9. परमात्मा का जिनको ज्ञान है, उनको सर्वदैव परहित चिन्ता का ध्यान है।
10. जिस एक के जानने से सब जाना जाता है, वह यही एक तत्त्व है।
11. गुप्त भेद सफलता की 'कुंजी' है, विद्यमान भेद खेद की पूँजी है, अतः दिल का भेद जिगर को भी मत दो।
12. जो उपदेश दूसरों को सुनाते हो, उसको प्रथम अपने जीवन में लाओ।
13. कहने की अपेक्षा करके दिखाना अति उत्तम होता है।
14. जिस बात को तू अपने लिए पसन्द नहीं करता, उसको दूसरों के लिए भी पसन्द मत कर।
15. जिस बात से व्यर्थ चिन्ता हो, उसको शीघ्र त्याग देना ही ठीक है।
16. सच्चे मित्र की प्राप्ति से संसार के सर्वकार्य सुगम होते हैं।
17. ज्ञानपूर्वक दूसरे का सुधार करना ही सच्ची मित्रता है
18. जब दो दिल एक हो जाते हैं, तब कठिन से कठिन काम को सरल बना लेते हैं।
19. जो प्रतिज्ञा के पालन में तत्पर है, वही पुरुष सत् पर हैं।
20. प्रतिज्ञा भंग करने से मनुष्य का विश्वास जाता रहता है।
21. परस्पर के विवाद से मनुष्यसमाज स्वाधीनता खो देता है।
22. यदि उपकार करने की सामर्थ्य नहीं रखता, तो अपकार मत कर।
23. किसी के सामने किसी की निन्दा न कर, क्योंकि निन्दा करना दोष है।
24. लोभी पुरुष भलाई से दूर हो जाता है, उससे कोई प्रेम नहीं करता।
25. जो शुभ कार्य करना चाहता है, उसको अपने हाथ से कर, पीछे की आशा झूठ है।
26. उदारता उत्तम गुण है, उसको हाथ से न छोड़।

27. मनुष्य शुभ कार्य में जितना देता है, अन्त में उसी को साथ लेता है।
28. जो अन्याय का साथ देता है, वह अन्त में रोता है।
29. पक्षपात छोड़कर आचरण करना उन्नति का मार्ग है।
30. अभिमानी पुरुष न्याय-प्रिय नहीं होता।
31. सम्पत्ति में परमेश्वर का धन्यवाद और विपत्ति में सन्तोष करने से अन्तःकरण पवित्र होता है।
32. उदार पुरुष की संगति-मनुष्य प्रकृति को सरल बनाती है।
33. कृपणता की आदत बुरी है, लोग प्रातः समय उसका नाम लेने में भी संकोच करते हैं।
34. व्यर्थ व्यय उदारता में और मितव्यय कृपणता में नहीं गिना जाता है।
35. मित्र की परीक्षा विपत्ति के समय ही होती है।
36. ज्ञान के तुल्य कोई वस्तु संसार में पवित्र नहीं, वास्तव में यही सबका मित्र है।
37. अज्ञान से बढ़कर मनुष्य का कोई अन्य शत्रु नहीं है, यह सर्वसम्पत्ति है।
38. विपत्ति में जो साथ नहीं देते हैं, वे सम्पत्ति में पादचुम्बन करते हैं।
39. अच्छे सत्संग से मनुष्य अच्छा और कुसंग से बुरा बन जाता है।
40. मनुष्य दूसरों से कष्ट नहीं पाता, प्रत्युत अपने ही विकर्म से सताया जाता है।
41. जैसा करेगा वैसा भरेगा, चक्की में जैसा दाना डालेगा वैसा आटा मिलेगा।
42. मेल से प्रत्येक कार्य में शक्ति आती है, बेमेल से वह दूर हो जाती है।
43. यथार्थ में मनुष्य वही है जिसका मन पवित्र और भाव शुद्ध है।
44. दुनिया की ममता बढ़ जाने से मनुष्य परमेश्वर को भूल जाता है।
45. जिससे कोई अपराध नहीं हुआ, ऐसा पुरुष संसार में नहीं मिलता।
46. मनुष्य अपने दोष पर ध्यान नहीं देता, इसलिए परकीय दोष को देखता है।
47. बिना सोचे जो कार्य करता है, वह पीछे पछताता है।
48. बाँटकर खाना प्रभु-भक्ति और अकेले खाना कम्बख्ती है।
49. मनुष्य जिस काम को उत्साह से करता है, वह पूरा हो ही जाता है।
50. पवित्र मन से अनिष्ट चिन्ता नहीं हो सकती।
51. जिस काम को आज करना है, उसको कल पर छोड़ना भूल है।
52. माता-पिता की सेवा करना सन्तान का मुख्य कर्त्तव्य है।
53. बड़ों की इज्जत, बराबरवालों से मुहब्बत और छोटों पर दया करने में बड़ा ही लाभ है।
54. बुद्धिमान् से अधिक आलाप न करके, उसकी बात को सुन, यह अच्छा काम है।
55. वस्त्र, शरीर और स्थान को स्वच्छ रखने से मन प्रसन्न रहता है।
56. गुरू और आचार्य का मान करने से ही विद्या की प्राप्ति होती है।

आर्य, श्री कपिल आर्य, कैप्टन जयपालसिंह आदि उपस्थित रहे। समस्त गुरुकुल वृन्दावन के ब्रह्मचारी व अध्यापकगण उपस्थित रहे। सत्संग और प्रवचन के बाद ऋषिलंगर में सभी श्रद्धालुओं ने प्रसाद ग्रहण किया।

लगभग दोपहर 2 बजे से आर्यसमाज तिलकद्वार से भव्य शोभायात्रा का आयोजन हुआ। जगह–जगह नगर कीर्त्तन करते हुए आर्यों पर नगर की जनता ने पुष्पवर्षा की। जगह–जगह बिस्कुट और फलों का वितरण किया गया। श्री दिलीपकुमार, डॉ0 सत्यमित्र, श्री रमेशचन्द आर्य, श्री नानकचन्द अग्रवाल एडवोकेट ने यात्रा के लिए जगह–जगह जल–फल आदि की उत्तम व्यवस्था की। प्रशासन का भी भरपूर सहयोग रहा। शोभायात्रा का भव्य समापन आर्यसमाज तिलकद्वार में हुआ वहाँ पर माननीय मन्त्री श्री कृष्णगोपाल गुप्त ने सभी को सम्मानित किया। माता श्रीमती लीलावन्ती कन्या इण्टर कालेज खुशीपुरा की छात्राओं का विशेष योगदान रहा। विद्यालय के प्रबन्धक श्री देवेन्द्र आर्य एवं वहाँ समस्त शिक्षकगण व्यवस्था में उपस्थित रहे। मन्त्री श्री कृष्णगोपाल जी ने सबका हार्दिक धन्यवाद व्यक्त किया। गुरुकुल विश्व विद्यालय वृन्दावन के सभी ब्रह्मचारियों और अध्यापकों ने भी इस आयोजन को सफल बनाने में अथक प्रयास किया। इसके लिए आर्यसमाज तिलकद्वार की ओर से विशेष धन्यवाद ज्ञापित किया गया।

आर्यो ध्यान रहे ऐसे आयोजनों की आज अत्यधिक आवश्यकता है क्योंकि सामान्य जनता सत्य मार्ग के अभाव में अन्य मार्गों पर भटक जाती है। जिसका दुष्परिणाम आज समाज लूटपाट, डकैती, बलात्कार, अत्याचार के रूप में दिखाई दे रहा है। बिना विचारों के व्यक्तियों का निर्माण नहीं होता और शिक्षा के बिना विचार नहीं बनते हैं और सत्य शिक्षा का वातावरण ही व्यक्ति की विचारधारा को मोड़ने में बड़ा सहायक हैं ऐसे आयोजनों से विचार बनते हैं। अतः सामाजिक परिवर्त्तन के लिए सबको ऐसे आयोजनों का महत्व समझकर अपने गाँव में समाज में संस्थाओं में सर्वत्र करने का प्रयास करना ही चाहिए तभी मानव जीवन की सफलता है अन्यथा पेट तो पशु और पक्षी भी भर लेते हैं। आशा है सभी आर्य इस ओर ध्यान देकर ऐसे भव्य आयोजन करते और कराते रहेंगे। ❁

जन्म जन्मों से रही है इस अँधेरे से लड़ाई।
है बड़ा दुस्साहसी पर मैं भी क्यों पीछे हटूँगा।
आतंक के आगे झुकूँ पर क्या समस्या दूर होगी।
स्नेह तम देते रहो तुमको मिटाकर ही रहूँगा।
मैं न देखूंगा मेरे संग कौन जलता या बुझेगा।
रोज आयेगा अँधेरा रोज मैं लड़ता रहूँगा।
दीप हूँ संकल्प मेरा है अंधेरे को मिटाना।
यह न मिट पाया तो मैं भी उम्रभर चलता रहूँगा।

सत्य प्रकाशन मथुरा के अनमोल प्रकाशन

शुद्ध रामायण (प्रेस में)	150.00	दयानन्द और विवेकानन्द	15.00
शंकर सर्वस्व	120.00	इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ	12.00
मानस पीयूष (रामचरित मानस)	100.00	बाल मनुस्मृति	12.00
नारी सर्वस्व	60.00	ओंकार उपासना	12.00
शुद्ध कृष्णायण	50.00	शुद्ध सत्यनारायण कथा	10.00
शुद्ध हनुमच्चरित (प्रेस में)	40.00	महिला गीतांजलि (प्रेस में)	
विदुर नीति	40.00	क्या भूत होते हैं	10.00
वैदिक स्वर्ग की झांकियाँ	40.00	आर्यों की दिनचर्या	10.00
चाणक्य नीति	40.00	महाभारत के कृष्ण	8.00
महाभारत के प्रेरक प्रसंग	40.00	ब्रजभूमि और कृष्ण	8.00
वेद प्रभा	30.00	सच्चे गुच्छे	8.00
शान्ति कथा	30.00	मृतक भोज और श्राद्ध तर्पण	8.00
नित्य कर्म विधि	30.00	वृक्षों में जीव है या नहीं	5.00
संगीत रत्नाकर प्रथम भाग (प्रेस में)	25.00	गायत्री गौरव	5.00
बाल सत्यार्थ प्रकाश	30.00	महर्षि दयानन्द की मान्यतायें	5.00
यज्ञमय जीवन	30.00	सफल व्यक्तित्व	5.00
दो बहिनों की बातें	25.00	सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ	5.00
दो मित्रों की बातें	25.00	मुक्ति प्रदाता त्रिवेणी	5.00
मील का पत्थर	20.00	जीजा साले की बातें	5.00
भ्रांति दर्शन	20.00	भागवत के नमकीन चुटकुले (प्रेस में)	

आवश्यक सूचना

1. पाठकगण वर्ष 2016 के लिये वार्षिक शुल्क 150/– रूपये अविलम्ब भिजवायें तथा पन्द्रह वर्ष की सदस्यता हेतु 1500/– भिजवायें।
2. पत्रिका भेजने की तारीख प्रतिमाह 7 व 14 है, कृपया ध्यान रखें।

बुक–पोस्ट
छपी पुस्तक/पुस्तिका

सेवा में,

....

....

....

....

.... पिन कोड ....

पत्र व्यवहार का पता :–

व्यवस्थापक – कन्हैयालाल आर्य

सत्य प्रकाशन

डाकघर– गायत्री तपोभूमि, वृन्दावन मार्ग (आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग), मसानी चौराहे के पास, मथुरा (उ० प्र०) 281003

फोन (0565) 2406431

मोबाइल– 9759804182

Yogendra # 9927136600

स्वामी, प्रकाशक, सम्पादक आचार्य स्वदेश के लिए रमेश प्रिन्टिंग प्रेस, पंचवटी, मथुरा में छपकर सत्य प्रकाशन मथुरा से प्रकाशित